मोहितलाल मजुमदार

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोधन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज़ लिख रहा है। भारत में लेखन-कला का यह संभवत: सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई०
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

मोहितलाल मजुमदार

मूल लेखक

द्विजेन्द्रलाल नाथ

अनुवादिका

मीता घोष

साहित्य अकादेमी

Mohitlal Majumdar : Hindi translation by. Mita Ghosh of Dwijendralal Nath's monograph in Bengali. Sahitya Akademi, New Delhi (1990) **SAHITYA AKADEMI**
REVISED PRICE Rs. 15.00

प्रथम संस्करण : 1990

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय
रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110001

क्षेत्रीय कार्यालय
जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 32 ए/44 एक्स, डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता 700 053
29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुंबई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

मुद्रक
रूपाभ प्रिंटर्स
दिल्ली 110 032

दो शब्द

मोहितलाल मजुमदार रवीन्द्र-युग के एक विशिष्ट कवि तथा समालोचक हैं। साहित्य जगत् में पहले-पहल उनका आविर्भाव कवि के रूप में हुआ। इस आत्माभिव्यक्ति के कुछ समय पश्चात् तत्कालीन बाङ्ला कविता का परिवेश नूतन-पुरातन के द्वन्द्व से विक्षुब्ध हो उठा था। उस उथल-पुथल भरे युग में एक सशक्त स्वातन्त्र्य-प्रेमी कवि के रूप में बाङ्ला काव्य की गति-प्रकृति के परिवर्तन में उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। गतानुगतिक काव्य-सृष्टि के जगत् में तो वे विद्रोही थे ही, साथ ही कवि-जीवन के उत्तरार्द्ध में सामंजस्य-वादी जीवन प्रत्यय ने उन्हें काव्य-सिद्धि के समुन्नत स्तर पर पहुँचा दिया था, यद्यपि कवि-कर्म की इस गौरव-*मय सफलता ने स्व-साहित्य प्रेमी मोहितलाल को आत्म-संतुष्ट नहीं रहने दिया।* बाङ्ला समालोचना-साहित्य के दैन्य से वे अत्यधिक विचलित थे। इसी कारण बाद में उन्होंने काव्य-चर्चा को त्याग कर समालोचना-साहित्य के उन्नयन तथा समृद्धि में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी। उनका यह सचेतन दायित्व-बोध प्रत्येक युग के साहित्य-प्रयासियों के लिए एक जीवंत प्रेरणा-स्रोत है।

इस प्रकार के एक आदर्शवादी साहित्यिक व्यक्तित्व को साहित्य-मर्मज्ञ देशवासियों के सम्मुख उजागर करना अप्रासंगिक न होगा। इसीलिए सुअवसर पाते ही अपनी क्षुद्र शक्ति के द्वारा इस पवित्र दायित्व के पालन की चेष्टा कर रहा हूँ। मेरा यह आन्तरिक प्रयास कितना सार्थक है, यह विचार करने का दायित्व सहृदय पाठक-पाठिकाओं पर है।

भूमिका लिखते हुए मैं मोहितलाल के अनन्य अनुरागी अध्यापक डॉ. असितकुमार बन्द्योपाध्याय के अनुग्रह को कृतज्ञता-पूर्वक स्मरण करता हूँ। साहित्यिक-मित्र नारायण चौधुरी ने अवसाद के क्षणों में उत्साहित कर मेरे कर्म-

प्रयास को जाग्रत रखने में पूरा सहयोग दिया। इस सम्बन्ध में अध्यक्ष श्री कल्याणकुमार 'दत्त, सम्पादक-मित्र क्षितीश चंद्र घोषाल तथा मिहिर आचार्य के सहृदयता-पूर्ण सहयोग को मैं भूला नहीं सकता। मेरे प्रति इन सबका स्नेह इतनी स्वतःस्फूर्त रहा कि छोटा-सा धन्यवाद देकर उसका मूल्य कम नहीं करना चाहता।

द्विजेन्द्रलाल नाथ

'सुप्ति'
बी-15 58, लेक प्लेस
कल्याणी, नदीया

अनुक्रम

जीवन-कथा	9
कवि मोहितलाल	23
कवि-दृष्टि, शिल्प-चेतना तथा प्रभाव	42
साहित्य-समालोचक तथा प्रबन्धकार	45
उपसंहार	79
परिशिष्ट	83
ग्रंथ-सूची	86

जीवन-कथा

बाङ्ला साहित्य के विशिष्ट कवि, प्रबन्ध कर्ता एवं साहित्य समालोचक मोहितलाल मजुमदार का जन्म 26 अक्तूबर सन् 1888 ईस्वी को नदिया ज़िले के कॉंचड़ापाड़ा में, ननिहाल में हुआ था। पिता नन्दलाल मजुमदार तथा माता हेमलता देवी थीं। हुगली जिले के बलागड़ गाँव में उनका पैतृक निवास था। पिता उदासीन प्रकृति के थे, इसलिए मोहितलाल की प्रारंभिक शिक्षा ननिहाल में, काँचड़ापाड़ा के निकट के हालिशहर स्कूल से आरम्भ हुई। किशोरावस्था में वे पैतृक स्थान बलागड़ में रहे तथा *बाङ्ला उच्च अंग्रेज़ी विद्यालय से सन् 1904 ईस्वी में उन्होंने एंट्रेंस की* परीक्षा पास की। तत्पश्चात् कलकत्ता मेट्रोपॉलियन इन्स्टीच्यूशन (वर्तमान विद्या-सागर कॉलेज) से 1908 ईस्वी में उन्होंने बी. ए. पास किया। बी. ए. में उनके पाठ्यक्रम के विषय थे संस्कृत तथा दर्शन (अंग्रेज़ी तथा बाङ्ला के अतिरिक्त)। उन दिनों बी. ए. का स्तर खूब ऊँचा था। इसलिए अपने पाठ्य-विषयों में उन्होंने यथेष्ट ज्ञान अर्जित किया। वस्तुतः उनके ख्याति-प्राप्त साहित्य-जीवन की नींव की स्थापना इस छात्र-जीवन में ही हुई। इस समय उन्होंने देश-विदेश के काव्य एवं समालोचना साहित्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। अध्ययन की यह अभिलाषा उनके जीवन के अंत तक अक्षुण्ण रही। अंग्रेज़ी रोमान्टिक कवियों की कविताएँ पढ़कर वे आत्म-विस्मृत हो, एक अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव करते थे। परवर्ती साहित्य-जीवन में उनका प्रभाव मोहितलाल पर सक्रिय रहा। स्नातक हो जाने पर कलकत्ता विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में स्नातकोत्तर तथा वकालत की पढ़ाई शुरू की लेकिन आर्थिक अभावों के कारण पढ़ाई बीच में ही छोड़कर वे नौकरी करने पर विवश हो गए। यहीं से उनकी संघर्षपूर्ण जीवन यात्रा शुरू होती है।

मोहितलाल के व्यक्तित्व के निर्माण में उनके माता-पिता का अत्यधिक प्रभाव रहा। संसार की वास्तविकता के प्रति पिता की गहरी उदासीनता तथा उनका काव्यानुराग बाल्यकाल से ही मोहितलाल के व्यक्तित्व में समाविष्ट हो गया था और माँ से उत्तराधिकार के रूप में उन्होंने अत्यधिक संवेदनशील स्वभाव प्राप्त

किया। काव्यानुरागी पिता द्वारा संग्रहीत पुस्तक जगत् में विचरण करके बालक मोहितलाल असीम आनन्द का अनुभव करते थे। नौ-दस वर्ष की आयु में ही कृत्तिवास की रामायण, काशीदास की महाभारत, रमेशदत्त के ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासों को पढ़कर वे आत्मलीन हो जाया करते थे। बारह-तेरह वर्ष की आयु में मधुसूदन, बंकिमचंद्र, नवीन सेन, द्विजेन्द्रलाल राय तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं ने विशेष रूप से, उनके अंतःकरण में अभूतपूर्व भावों का संचार किया। इनकी रचनाओं के बहुत से अंश न केवल उन्हें कंठस्थ थे अपितु अवकाश के समय के नित्य-संगी भी थे। चित्रकला की ओर भी उनका यथेष्ट रूझान था। यह प्रवणता परवर्तीकाल में उनकी कविताओं की चित्रात्मकता में व्यक्त हुई।

बाङ्ला-साहित्य के दो ख्यातिप्राप्त कवियों के साथ मोहितलाल के आत्मीय सम्पर्क थे। रूप-तन्मय कवि देवेन्द्रनाथ सेन पिता नन्दलाल के दूर के रिश्ते के भाई थे। इनके अलावा सुविख्यात कवि ईश्वरगुप्त के साथ मामा के वंश की ओर से उनका दूर का सम्बन्ध था।

जीवन-निर्वाह के लिए मोहितलाल ने विवश होकर शिक्षा असमाप्त छोड़कर सर्वप्रथम शालिखा के एक स्कूल में तथा इसके बाद 1910 ईस्वी में तालतला हाईस्कूल में अस्थायी शिक्षक की नौकरी की। शिक्षण-कर्म के साथ ही वे साहित्य-चर्चा करते रहे तथा कविताएँ भी लिखते रहे। इस समय तक कविता-लेखन पर उनका इतना सहज अधिकार हो चुका था कि परीक्षा-भवन में निगरानी का कार्य करते हुए उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता 'नागार्जुन' की रचना की।[1]

इस स्कूल में काम करने के दौरान उनकी प्रथम काव्य-पुस्तिका 'देवेन्द्रमंगल' (1912 में) प्रकाशित हुई थी। 1906 इस्वी में बाराकपुर निवासी राय-साहब योगेन्द्रनाथ राय की कन्या तरुलता देवी के साथ मोहितलाल परिणय-सूत्र में बँध गए। सांसारिक दायित्वों में वृद्धि होने के कारण 1914 ईस्वी में उन्हें शिक्षण-कार्य छोड़ सरकारी राजस्व विभाग में कानूनगो का पद ग्रहण कर उत्तर बंगाल जाना पड़ा। तीन वर्षों तक इस नीरस सरकारी नौकरी को करते हुए प्रतिक्षण उन्हें यह अनुभव होता रहा कि वे साहित्य-जीवन से निर्वासित होते जा रहे हैं। इस आन्तरिक वेदना-बोध के परिणाम-स्वरूप उन्होंने सरकारी नौकरी त्यागकर 1919 ईस्वी में 'कलकत्ता हाईस्कूल' (नेबूतला) में सहकारी शिक्षक का पद ग्रहण कर लिया था। पुराने जमाने के आचार्यों की तरह मोहितलाल भी शिक्षण-कार्य को जीवन का एक महान व्रत मानते थे। पढ़ाते हुए वे छात्रों में किस प्रकार साहित्य-रस का संचार कर देते थे उसका आवेगपूर्ण वर्णन मोहितलाल के पूर्ववर्ती छात्र और बुद्धिजीवी लेखक नीरदचंद्र चौधुरी ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ 246 पर तथा

1. द्रष्टव्य, अजहरूद्दीन खाँ, बाङ्ला साहित्ये मोहितलाल, पृ. 8

2 An Autobiography of an un known Indian. (1951)

मेरे द्वारा सम्पादित —'मोहितलाल मजुमदार : व्यक्तित्व तथा साहित्य प्रतिभा' (1982) ग्रंथ में अपने 'मास्टर-मोशाई' प्रबन्ध में इसका वर्णन किया है। वस्तुत: अध्ययन-अध्यापन, काव्य-रचना तथा साहित्य-चर्चा को मोहितलाल ने जिस प्रकार जीवन के अपरिहार्य धर्म के रूप में ग्रहण कर लिया था, वर्तमान आदर्शहीनता के युग में उसकी मिसाल दुर्लभ है।

उत्तर बंगाल में जलपाईगुड़ी से शिलाइदह तथा शिलाइदह से बाजितपुर तक पद्मा नदी की दिगन्त-विस्तृत बालुकामय तटभूमि मोहितलाल का कर्मक्षेत्र था। प्रकृति के उस भीमाकार वक्ष पर काम के उद्देश्य से कभी उन्हें घोड़े पर चढ़ घूमना पड़ता था, तंबुओं में रहना पड़ता था, कभी-कभी तो वृक्ष के नीचे भी रहते थे। एक बार तिस्ता के गर्भ से दैव ने ही उनकी रक्षा की थी, पद्मा के तट पर भीषण आंधी-तूफ़ान में फँस जाने पर भी किसी तरह मौत के मुँह से निकल आए थे। नाना प्रकार के लोगों के साथ मेलजोल तथा प्रकृति के रुद्र-मधुर रूप को देखकर मोहितलाल के भावप्रवण हृदय में जिन मिश्रित भावों का संचार हुआ, वैसा ज्ञान उन्हें अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं हो पाया था —"अपनी आत्मकथा में मोहितलाल ने इस बात का उल्लेख किया है। मोहितलाल ने यह भी स्वीकार किया है कि पद्मा नदी के तट की उन्मुक्तता में बिताया हुआ बंधनहीन जीवन ही उनकी सुप्रसिद्ध 'बेदुईन' कविता का प्रेरणा स्रोत था। उनकी अन्य दो प्रसिद्ध कविताओं में— 'नादिर शाहेर जागरण' तथा 'नादिर शाहेर शेष' में उनके इस समय के उन्मुक्त जीवन का परिचय मिलता है।"[1] 'शिलाइदहे रवीन्द्रस्मृति' में मोहितलाल ने बताया है कि पद्मा नदी की अनन्त प्रसारित बालुकामय-शैय्या के निशीथ-निर्जन रूप को निहार कर रवीन्द्रनाथ ध्यानमग्न हो जाते थे, तथा पद्मा नदी के प्लावन के भयंकर भैरवी रूप को देखकर वे अपने हृदय में तीव्र उत्तेजना का अनुभव करते थे। पौरुष-धर्मी जीवन के प्रति मोहितलाल के आकर्षण का आभास इस वर्णन में थोड़ा-बहुत प्राप्त होता है।

इससे पहले जब वे कलकत्ता में रह रहे थे तब कवि जतीन्द्रमोहन बागची के माध्यम से रवीन्द्रनाथ के साथ उनका परिचय हुआ था। उत्तर-बंग में निवास के दौरान जो परिचय हुआ उस परिचय-सूत्र के आधार पर ही मोहितलाल ने एक बार पद्मा नदी पर रवीन्द्रनाथ की नाव पर जाकर कवि को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की थी।

1928 जुलाई से 1944 जून तक अध्यापन कार्य के कारण ढाका में रहने के अतिरिक्त मोहितलाल के संघर्षमय जीवन का अधिकांश समय कलकत्ता या उसके आस-पास ही व्यतीत हुआ। 1909 से 1952 तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा

---

1. द्रष्टव्य : अजहरुद्दीन ख़ाँ, बाङ्ला साहित्ये मोहितलाल, पृ. 10

साहित्य-गोष्ठियों के साथ सम्बद्ध रहकर वे बंगभारती की सेवा करते रहे 'मानसी-वीरभूमि-वाणी', 'भारती', 'प्रवासी', 'कालीकलम', 'कल्लोल', 'शनिबारेर चिठि' तथा स्व-सम्पादित 'बंगदर्शन, 'बंगभारती' आदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उनके साहित्य-जीवन के विभिन्न आयाम उजागर हुए हैं।

'मानसी' नामक साहित्यिक पत्र में कविताएँ तथा प्रबन्ध आदि के प्रकाशित एवं प्रशंसित होने पर मोहितलाल पहली बार कवि एवं प्रबन्ध-कर्ता के रूप में आत्म-विश्वास से भर उठे। 'मानसी' में प्रकाशित उनकी प्रसिद्ध रचना 'आमि' (1329 बंगाब्द) उनके आत्म-विश्वास का गर्वित दृष्टान्त है। इसी निबन्ध के कारण परमप्रिय कविबंधु नज़रुल इस्लाम के साथ सात वर्ष बाद उनका विच्छेद हुआ था। उसी वर्ष वीरभूमि पत्रिका में उनकी कविताएँ, प्रबन्ध, फ्रांसीसी एवं अंग्रेज़ी कहानियों के अनुवाद भी प्रकाशित हुए थे। इसी समय उनकी कवि-प्रतिभा के अनुरागी मित्र जीवनकाली राय तथा ख्याति प्राप्त कवि करुणानिधान बन्द्यो-पाध्याय से उनकी घनिष्ठता हुई थी। तत्पश्चात् 'भारती' गोष्ठी के सम्पर्क में आने पर मोहितलाल साहित्य-सृष्टि के क्षेत्र में वृहत्तर सार्थकता के पथ पर अग्रसर हुए। वस्तुतः भारती गोष्ठी के साहित्यिक परिवेश ने उनके लेखकीय जीवन के उन्मेष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस पत्रिका में उनकी अनेक कविताएँ तथा उत्कृष्ट प्रबन्ध ही प्रकाशित नहीं हुए अपितु 'सत्यसुन्दरदास' छद्मनाम से उन्होंने इस साहित्यिक पत्रिका में काव्य-तत्त्व से सम्बन्धित जिस गंभीर आलोचना का सूत्रपात किया, उसने समकालीन विदग्ध साहित्यकारों का ध्यानाकर्षण किया। 'भारती' के अतिरिक्त भी इस समय 'प्रवासी', 'नव्य-भारत', तथा 'मुस्लिम-भारत' आदि में अनेक उत्कृष्ट गद्य-पद्य रचनाओं के प्रकाशित होने पर कलकत्ता के साहित्यिक समाज में मोहितलाल ने व्यापक ख्याति अर्जित की। 'भारती', 'यमुना' तथा 'मुस्लिम-भारत' के कार्यालयों में जिन साहित्यिक गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था, मोहितलाल उनमें नियमित रूप से उपस्थित रहते थे। 'भारती' की बैठक में सत्येन्द्रनाथ दत्त के साथ तथा 'यमुना' की बैठक में शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय से उनका परिचय हुआ था। गजेन'दा की प्रसिद्ध बैठक में भी नये-पुराने बहुत-से साहित्यकारों के साथ उनका परिचय हुआ था। 'मुस्लिम-भारत' में नज़रुल की अपूर्व लययुक्त कविता पढ़कर मोहितलाल उनकी ओर आकर्षित हुए थे। परन्तु उनका यह मधुर सम्बन्ध आदर्शवादी कारणों से स्थायी नहीं हो पाया। सत्येन्द्रनाथ तथा शरतचन्द्र के प्रति उनकी आन्तरिक श्रद्धा अंत तक अक्षुण्ण रही, उनकी साहित्यिक प्रतिभा के सम्बन्ध में बाद में की गई उनकी मूल्यवान आलोचना ही इसका प्रमाण है।

उपरोक्त पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त उच्चस्तरीय 'प्रवासी' पत्रिका में कविता-प्रबन्ध, साहित्य-तात्त्विक आलोचना प्रकाशित होने पर समकालीन साहित्य-जगत्

में 'मोहितलाल' का नाम सुपरिचित हो गया था। उनकी अभिनव जीवन-धर्मी कविताओं ने रवीन्द्र-काव्य-चेतना विरोधी उस युग के तरफ कवियों को अत्यधिक प्रभावित किया था। नये युग को बुद्धिवादी जीवन-जिज्ञासा के संबंध में उनका प्रथम काव्य-ग्रंथ 'स्वप्न-पसारी' (1921) में प्रकाशित हुआ था। आठ वर्ष पूर्व नोबेल पुरस्कार से सम्मानित रवीन्द्रनाथ की काव्य-प्रतिभा के प्रकाश से तब चतुर्दिक् आलोकित था।

रवीन्द्रनाथ की सूक्ष्म भावचेतनामय रोमान्टिक कविता एक विशेष श्रेणी के काव्य-प्रेमियों का मनोरंजन करने में सक्षम होने पर भी युद्धोत्तर युग की नैराश्य-वादी नयी पीढ़ी के कवियों को —जो जीवन की वास्तविकताओं से पीड़ित थे, संतुष्ट नहीं कर पा रही थी। कवि-जीवन के प्रारम्भ में रवीन्द्र-प्रतिभा से मुग्ध मोहितलाल ने अपनी कविताओं में रोमान्टिक स्वप्न रचना को प्रमुखता प्रदान की परन्तु जब जीवन की वास्तविकताओं से उनका सामना हुआ तब उनकी कविताओं के स्वर में परिवर्तन हुआ (जिसका उल्लेख उत्तर-वंग में कवि-जीवन प्रसंग में किया गया है)। सूक्ष्म तथा अमूर्त्त भावों से युक्त कविता के राज्य में मूर्त्त भावों से युक्त कविताएँ लिखकर उन्होंने उस समय के काव्य-प्रेमियों का ध्यानाकर्षण किया। तत्पश्चात् अपने प्रथम प्रकाशित काव्य-संग्रह में रवीन्द्रनाथ के रूमानी भाव-पूर्ण काव्यादर्शों के विरुद्ध विद्रोह करके उन्होंने बौद्धिक जीवन-चेतना की सहायता से देहवाद का निःसंकोच समर्थन किया। (पाप, अघोरपंथी, मृत्यु जैसी कविताओं में)। इसी कारण प्राचीन पंथी साहित्यकारों द्वारा तिरस्कृत होने पर भी जीवन की वास्तविकताओं से संबंधित नयी पीढ़ी के कवियों एवं लेखकों ने मुक्त-कंठ से उनकी अभ्यर्थना की।

आधुनिक काव्य-जगत् में स्वातन्त्र्यतावादी 'सशक्त कवि मोहितलाल की विजय-यात्रा प्रारम्भ हुई। 1333 बंगाब्द में (ई० 1926) आधुनिकता से देदीप्यमान उनका काव्य-ग्रंथ 'विस्मरणी' प्रकाशित हुआ। इससे पूर्व अत्याधुनिक नामधारी कवि-साहित्यकारों के एक दल ने 'प्रगति, कल्लोल, कालिकलम' जैसी साहित्यिक-पत्रिकाओं के माध्यम से रवीन्द्रनाथ की अलौकिक-रोमांटिक भावचेतनामय कविता के विरुद्ध तुमुल कोलाहल शुरू कर दिया था। उनके द्वारा चलाई गई पत्रिका में ही मोहितलाल की सुप्रसिद्ध कविता 'पांथ' एवं उसके पश्चात् 'प्रेतपुरी' प्रकाशित हुई थी। शब्दों के सतर्क चयन, प्रवाहमान छंदों के गम्भीर झंकार से देहवादी जीवन की आकांक्षा को मोहितलाल ने इन समस्त कविताओं में आकर्षक एवं सार्थक काव्यरूप दिया, निश्चित रूप से रवीन्द्र प्रभावित युग में वह सम्पूर्णतया कल्पनातीत है। उनके काव्य में अन्तर्निहित अभिनव भाव-वस्तु तथा उनकी सशक्त अभिव्यक्ति के लिए रवीन्द्र-विद्रोही युवा कवि बुद्धदेव बसु तथा अचिन्त्य कुमार सेनगुप्त ने उनकी सराहना की। सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित काशी की

'उत्तरा' पत्रिका में प्रकाशित मोहितलाल की उत्तप्त ऐन्द्रियतावादी कविताओं ने भी कलकत्ते के आधुनिकतावादी कवियों को सहज ही आकर्षित किया। रवीन्द्र युग में ही एक विशेष श्रेणी के यथार्थवादी कवियों ने मोहितलाल को नये काव्यान्दोलन के नायक के रूप में स्वीकार किया।

परन्तु मोहितलाल अधिक समय तक इस नायकत्व से संतुष्ट नहीं रह पाये। इससे पहले उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रबन्ध-निबन्धों में साहित्य की मूलनीति तथा शाश्वत आदर्शों की खोज की थी। उस आदर्श के आलोक में उन्होंने पाया कि वास्तविकता के नाम पर साहित्य के नव्य आन्दोलन के नायक कितना भी कोलाहल क्यों न करें, असल में उनकी रचनाओं में निर्लज्ज रिरंसा तथा स्थूल देह-संभोग की कामना को ही प्रमुखता दी जा रही है। इसी कारणवश वे साहित्य में आधुनिकता की ध्वजाधारी 'कल्लोल' पत्रिका से सम्पर्क त्याग कर 'शनिवारेर चिठि' से सम्बद्ध हो गए तथा क्रमशः गम्भीर चिन्ताश्रयी साहित्य से सम्बद्ध निबन्धों की रचना कर 'चिठि' की मर्यादा में श्रीवृद्धि की। वस्तुतः परवर्तीकाल में जिन समालोचना ग्रंथों द्वारा मननशील प्रबन्धावली के समालोचक के रूप में उन्हें बाङ्ला साहित्य ने प्रतिष्ठित किया, उनमें से अधिकांश इसी 'शनिबारेर चिठि' में पहले पहल प्रकाशित हुए थे। 'कल्लोल' पत्रिका से सम्बन्ध-विच्छेद करने के पश्चात् भी वे प्रेमेन्द्रमित्र, शैलजानन्द मुखोपाध्याय तथा मुरलीधर बसु के द्वारा सम्पादित 'कालिकलम' पत्रिका में दो वर्षों तक (1333-34) कविताएँ, अनूदित रचनाएँ तथा प्रबन्ध आदि लिखते रहे, जिन्हें बाद में काव्य तथा रचना संग्रह में संग्रहीत किया गया।

अपने प्रखर व्यक्तित्व तथा मूल्यवान रचनाओं के सहारे 1334 (ई० 1927) के आस-पास मोहितलाल शनिचक्र दल के प्रमुख हो गए थे साप्ताहिक से मासिक में रूपान्तरित होने के बाद जब सजनीकान्त दास ने 'चिठि' के सम्पादन का दायित्व ग्रहण किया तब भी मोहितलाल ने पूरे उत्साह और मनोयोग के साथ साहित्य के चिरन्तन आदर्शों से सम्बन्धित विषयों पर गंभीर चिंतनयुक्त प्रबन्ध-निबन्ध आदि लिखकर इस लघु-व्यंग्यात्मक पत्रिका को एक नया स्वर तथा स्वरूप प्रदान किया। सजनीकान्त दास ने अपनी आत्मस्मृति में तथा स्वयं मोहितलाल ने भी 'आमि ओ शनिवारेर चिठि' नामक प्रबन्ध में लिखा है कि इस साहित्यिक पत्र के स्तर को निरन्तर ऊँचा उठाने के लिए आर्थिक अभावों से ग्रस्त मोहितलाल ने अथक प्रयास का परिचय दिया।[1] 'शनिवारेर चिठि' के साथ मोहितलाल के घनिष्ठ सम्पर्क का परिचय देते हुए अजहरुद्दीन खाँ ने स्वरचित ग्रन्थ 'बाङ्ला साहित्ये मोहितलाल' के पृ. 37 पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा है :

1. बांसवी शताब्दी, शारदीया संख्या, 1366

"इस पत्रिका के साथ उनका इतना अभिन्न नाता जुड़ गया था कि साधारण पाठक मोहितलाल के नाम से शनिवारेर चिठि तथा 'शनिवारेर चिठि' का नाम लेते ही मोहितलाल को यादकरते थे।"

'शनिवारेर चिठि' के एक मनस्वी लेखक के रूप में व्यापक ख्याति अर्जित करने के उपरान्त मोहितलाल के कर्म-जीवन में एक ऐसा परिवर्तन आया जो उनके लिए भी सम्पूर्णतया अप्रत्याशित था। शनिचक्र के अंतरंग सुहृद, उनकी साहित्यिक-प्रतिभा के परम अनुरागी, सुकवि, प्राच्य-पाश्चात्य साहित्य के महान् पंडित अध्यापक डॉ. सुशीलकुमार दे की सक्रिय सहायता से उन्होंने ढाका विश्वविद्यालय में बाङ्‌ला के अध्यापक का पद प्राप्त किया तथा जुलाई 1928 में इस सम्मान को ग्रहण किया। डॉ. दे उन दिनों ढाका विश्वविद्यालय के बाङ्‌ला तथा संस्कृत विभाग के यशस्वी अध्यक्ष थे दीर्घकाल तक शिक्षणकार्य तथा कुछ समय तक सरकारी नौकरी द्वारा जीवन-यापन करने के पश्चात् विश्वविद्यालय के जीवन से प्राप्त अपेक्षाकृत आर्थिक सम्पन्नता तथा ज्ञान-चर्चा के अनुकूल परिवेश से मोहितलाल के साहित्यिक जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ जो बाद में उनके जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

1928 से 1944 ईस्वी तक, लगभग सोलह वर्षों के लम्बे समय में विश्वविद्यालय के एक प्रतिभाशाली अध्यापक के रूप में मोहितलाल काफ़ी प्रसिद्ध हो गए थे। इस दौरान उनके साहित्यिक जीवन में जो परिवर्तन आया, वह ध्यान देने योग्य था। जीवन के यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति तथा विचित्र रूपाश्रयी कविताओं की रचना कर बाङ्‌ला-साहित्य में उन्होंने मौलिक प्रतिभावान कवि के रूप में स्वीकृति पायी थी, परन्तु अध्यापक जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् यह देखने में आया कि उसके स्थान पर उनमें एक बहुपाठी आत्मान्वेषी साहित्य-समालोचक की सूक्ष्मदर्शी एवं निर्भीक विचारशीलता जाग उठी है। उच्च स्तरीय साहित्य को पढ़ाते हुए बाङ्‌ला समालोचना साहित्य की दीनता को देखकर वे अत्यन्त दुःखी हो गए थे। फलस्वरूप काव्य-रचना जैसे प्रिय विषय को त्याग कर उन्होंने समालोचना साहित्य के उन्नयन एवं श्रीवृद्धि की ओर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर दिया। साहित्य के मर्मलोक में प्रवेश करने का सहजात सूक्ष्म रसबोध तो उनमें था ही इसके साथ-ही, देशी-विदेशी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन से प्राप्त नयी विचार शक्ति भी अब उसमें जुड़ गयी थी। स्वतः स्फूर्त साहित्यबोध एवं मननशील साहित्य भावनाओं की सहायता से उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य की गहरी प्रेरणा तथा कुछ प्रमुख साहित्यकारों की साहित्य-रचना का परिचय देते हुए 1936 ईस्वी में (अध्यापक जीवन में प्रवेश करने के सुदीर्घ आठ वर्षों के पश्चात्) समालोचना से सम्बन्धित उनकी पहली पुस्तक 'आधुनिक बाङ्‌ला साहित्य' प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही उन्होंने साहित्य-प्रेमी विद्वानों

में एक सशक्त समालोचक के रूप में स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

ढाका मे अध्यापन करते हुए 1936 ईस्वी में 'स्मरगरल' तथा उसके भी पाँच वर्षों के पश्चात् 1941 ईस्वी में 'हेमंत गोधूलि' काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। इन दो काव्य-संग्रहों में संकलित कविताएँ पहले ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हो चुकी थीं। दोनों संग्रहों मे ही यह देखने में आया कि जीवन के प्रति जिज्ञासा रखनेवाले कवि मोहितलाल में समालोचक मोहितलाल जाग उठा है। इन दो संग्रहों के प्रकाशन के पश्चात् मोहितलाल ने काव्य-सृजन के जगत् से विदा लेकर समालोचना-साहित्य की रचना में अपना पूरा समय लगा दिया। काव्य-सृजन के जगत् से विदा ले लेने पर भी उनकी कवित्व-शक्ति सदा अक्षुण्ण रही, 1360 के फाल्गुन संख्या के मासिक 'वसुमति' में प्रकाशित 'दारार छिन्नमुंड ओ औरंगजेब' नामक नाट्य-कविता इसका प्रमाण है। काव्य-सृजन त्याग कर स्वेच्छा से समालोचना के नीरस तथा गम्भीर क्षेत्र में प्रवेश को कवि मोहितलाल के प्रिय वस्तु के त्याग के मिसाल के तौर पर विवेचित किया जाना चाहिए।

ढाका विश्वविद्यालय में अध्यापन के दौरान 'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' के अतिरिक्त भी मोहितलाल रचित 'साहित्य-कथा' (1928), 'विचित्र-कथा' (1941), 'विविध-कथा' (1941) आदि पुस्तकों के प्रकाशित होने पर एक शक्तिशाली आलोचक के रूप में उनकी ख्याति चारों ओर फैल गई। साहित्य सम्बन्धी अपनी गहरी अन्तर्दृष्टि के कारण ही वे समालोचक के रूप में प्रसिद्धि पाने लगे थे। 'साहित्य-कथा' की भूमिका में मोहितलाल ने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि यह अन्तर्दृष्टि केवल विभिन्न ग्रन्थों से अर्जित विद्या से प्राप्त नहीं, उसके लिए समालोचक में मौलिक प्रतिभा का होना भी नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य एवं प्राच्य साहित्य तथा साहित्य-तत्त्वों के गंभीर अध्ययन की सहायता से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि तुलनात्मक साहित्य-विचार पद्धति ही समालोचना के स्तर को ऊपर उठा सकता है। बाद में साहित्यकारों ने इस सत्य को स्वीकार किया कि मौलिक प्रतिभाजनित अन्तर्दृष्टि तथा तुलनात्मक साहित्य-विचार-पद्धति के प्रयोग से वे बाङ्ला समालोचना साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान करने में सफल रहे।

ढाका में रहते हुए 1944 ईस्वी में मोहितलाल ने बच्चों के लिए 'रूपकथा' नामक एक काव्य-ग्रंथ की रचना की। रस-सृष्टि की दृष्टि से न केवल बच्चे अपितु किशोरों क लिए भी अत्यन्त दुरूह होने के कारण यह काव्य-ग्रंथ पाठकों को अधिक आकर्षित नहीं कर पाया। काव्य-रसिक समाज के द्वारा सम्मानित होते हुए भी मोहितलाल के काव्य को पहले-पहल विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में स्थान नहीं मिल पाया था। लेकिन बाद में 'विस्मरणी' तथा 'स्मरगरल' दोनों काव्यों को कलकत्ता विश्वविद्यालय में बी. ए. आनर्स परीक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया

था। उनकी कुछ रोमान्टिक कविताएँ भी स्कूल के पाठ्य-क्रम के अन्तर्गत ले ली गई थीं। वे कभी इस बात से दुःखी नहीं हुए कि उनकी कविताएँ बहुत अधिक लोकप्रिय नहीं हुई। उनका विचार था कि वास्तविक काव्य-प्रेमियों की संख्या तो सदा ही अत्यन्त सीमित रही है। कविता क्या है—पाठक यह समझ सकें, इस उद्देश्य से उन्होंने 1942 में 'काव्य-मंजूषा' नामक एक सुनिर्वाचित काव्य-संकलन का सम्पादन किया। 'शनिवारेर चिठि' में पैलग्रेव के प्रसिद्ध अंग्रेजी काव्य-संकलन के साथ इस संकलन की तुलना करते हुए प्रशंसात्मक समालोचना प्रकाशित हुई। सन् 1951 ईस्वी में 'छंद चतुर्दशी' में समय-समय पर उनके द्वारा रचित सुप्रसिद्ध सॉनेट प्रकाशित हुए। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे विदेशी कविता, कहानी तथा प्रवन्धों के जो उनके अनुवाद छपे थे, बाद में उन सबको भी ग्रन्थाकार में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। मूल रचनाओं के सौन्दर्य तथा साहित्य-रस को अक्षुण्ण रखते हुए विदेशी साहित्य का जिस स्वच्छन्दता तथा प्रांजलता के साथ मोहितलाल ने अनुवाद किया, उनके द्वारा अनूदित पुस्तकों में उसका प्रमाण विद्यमान है।

1944 ईस्वी के जून के महीने में ढाका विश्वविद्यालय से अवकाश प्राप्ति के पश्चात् सपरिवार ढाका छोड़कर मोहितलाल कुछ समय तक बाराकपुर में रहे, तीन वर्षों तक हुगली ज़िला के बागनान में तथा उसके बाद जीवन के बाक़ी दिन उन्होंने कलकत्ते के निकट बोड़िशा में बिताए। ढाका में अपने कार्य-काल के दौरान अपेक्षाकृत बड़े परिवार की ज़िम्मेदारियों को निभाने में तो काफ़ी रुपया ख़र्च होता ही था, इसके अतिरिक्त वे अपने पुष्पोद्यान तथा उदार आतिथ्य-प्रेम के कारण भी अत्यधिक धन व्यय करते रहे। परिणामस्वरूप भविष्य के लिए वे कुछ भी संचय न कर पाए थे। बोड़िशा में स्थायी रूप से बस जाने के बाद नौ सदस्यों के परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने में उन्हें बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सत्यवादी एवं स्पष्ट-वक्ता होने के कारण इस दौरान अनेक मित्रों के साथ उनका सम्बन्ध-विच्छेद हो गया था। अप्रिय समालोचना के कारण प्रभावशाली व्यक्तियों एवं प्रतिष्ठानों की सहायता से भी वे वंचित रहे। इससे उनकी स्वभावगत् उग्रता और अधिक बढ़ गई थी। उन्हें ऐसा लगने लगा था कि शिक्षित समाज उनके विरुद्ध एक षड्यंत्र रच रहा है। कलकत्ते के बंगवासी कालेज में जब स्नातकोत्तर बाङ्ला विभाग खोला गया तब कुछ मित्रों के प्रयत्न से उन्होंने वहाँ अध्यापक का पद प्राप्त किया तथा मृत्युपर्यन्त वहीं अध्यापन कार्य में संलग्न रहे। अध्यापन-कार्य में लगने पर यद्यपि विक्षुब्ध मनःस्थिति से कुछ राहत मिली थी परन्तु गृहस्थी की आवश्यकताएँ अब भी उनके सम्मुख मुँह बाए खड़ी थीं।

जब वे बोड़िशा में रह रहे थे तब परिवार के भरण-पोषण के लिए निरन्तर आर्थिक चिन्ताओं से घिरे रहने के कारण तथा नाना रोगों से ग्रस्त हो जाने के कारण उनका बलिष्ठ शरीर धीरे-धीरे दुर्बल होता चला गया। शारीरिक अस्वस्थता

तथा मानसिक अंतर्द्वन्द्वों से घिरे होने पर भी मोहितलाल ने अपनी सृजनशीलता तथा सक्रियता नहीं खोयी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्य-संस्कृति की आलोचना तो उनका अत्यन्त प्रिय विषय था ही परन्तु इसके अलावा भी वे इस अवधि में समकालीन साहित्य से सम्बन्धित गम्भीर चिन्तन-युक्त विश्लेषणात्मक समालोचना तथा निबन्ध आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करते रहे। कलकत्ते के साहित्यिक समाज में एक मनस्वी आलोचक के रूप में वे प्रतिष्ठित हो गए थे। एकांत परिवेश में स्थित बोड़िशा के आवास में उस समय साहित्य के प्रतिष्ठित अध्यापक, कवि, उपन्यासकार, नाटककार आदि प्रतिभावान लेखकों तथा साहित्य के क्षेत्र में प्रसिद्धि पाने के इच्छुक लेखकों की बैठकें जमा करती थीं। साहित्य तथा जाति के वर्तमान एवं भविष्य सम्बन्धी चर्चाओं में मोहितलाल, अस्वस्थ होते हुए भी, क्लान्तिहीन रूप से सतत आग्रही रहे। साहित्य-रसिकों की बैठकों में कभी वे अत्यन्त उग्र हो जाते थे, तो कभी सहृदय, या फिर किसी समय उदार हास्य से प्रफुल्लित सुरसिक। इस समय उनके घनिष्ठ-सम्पर्क में आने वाले अनेक साहित्य-रसिकों ने यह स्वीकार किया है कि दारिद्र्य से जूझते हुए भी इस प्रकार का भाव-तन्मय साहित्यिक उन्होंने अन्यत्र नहीं देखा। बोड़िशा में रहते हुए अनेक मित्रों को लिखे गए पत्रों में स्वयं उन्होंने भी यह कहा है कि साहित्य-सेवा ही उनका एकमात्र धर्म है। अन्य किसी धर्म को वे मानते नहीं थे। लेकिन इस समय साहित्य-चिंता के साथ-ही-साथ एक और चिंता जुड़ गई थी। वे बाङ्लादेश तथा जाति के ह्रास के विषय को लेकर अत्यन्त विचलित थे। बाङ्ला जाति की भविष्य-सम्बन्धी चिंता ने उन्हें भाव-तन्मय साहित्यिक जीवन से हटाकर गहरी निराशा के अंधकार में धकेल दिया। फलस्वरूप वे एक सर्वनाशा परिणति की ओर आकर्षित हो गए।

ढाका में पढ़ाते हुए 1936 से 1942 तक मोहितलाल के केवल चार साहित्य समालोचनात्मक निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हुए थे। साहित्य तथा स्वजाति विषयक उनके अधिकांश निबन्ध-संग्रह तथा ग्रंथ तब प्रकाशित हुए जब वे स्थायी रूप से कलकत्ते में बस गए थे। 'बाङ्ला कवितार छंद' (1952), 'बाङ्ला नवयुग' (1952), 'जयतु नेताजी' (1953), 'कवि श्री मधुसूदन' (1954), 'साहित्य-विचार' (1958), 'बंकिम चंद्रेर उपन्यास' (1955), 'बंकिम-वरण' (1956) 'रवि प्रदक्षिण' (1956), 'श्रीकांतेर शरत्चन्द्र' (1957), 'जीवन-जिज्ञासा' (1958), 'बाङ्ला प्रबन्ध ओ रचनारीति' (1958), 'बाङ्ला ओ बाङ्गाली' (1958), 'कवि रवीन्द्र ओ रवीन्द्रकाव्य', प्रथम खण्ड (1959), मृत्यु के उपरान्त द्वितीय खंड (1960), अनुवाद : 'विदेशी छोटो गल्प संचयन' (1957), 'विदेशी काव्य संचयन'। सम्पादित ग्रंथ : 'अभयेर कन्या (1954), 'दुर्गेशनन्दिनी ओ कपाल कुंडला' (1947), 'काव्य-चयनिका' (1969) तथा 'मोहितलाल काव्य-संभार' (1969) उनकी मृत्यु के उपरान्त प्रकाशित हुए थे। इसके अतिरिक्त मोहितलाल

1947 से 1949 ईस्वी तक 'बंगदर्शन' तथा 1941 में (1359 बंगाब्द के वैशाख से आषाढ़ तक) 'बंगभारती' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन करते रहे।

इन ग्रंथों के प्रकाशन के पश्चात् बाङ्ला साहित्य में मोहितलाल अन्तर्दृष्टि-सम्पन्न सशक्त समालोचक एवं मनस्वी प्रबन्ध-कर्ता के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे।

उन्नीसवीं शताब्दी की आदर्शवादी चेतना से प्रबुद्ध मोहितलाल बीसवीं शताब्दी में बाङ्ला जाति तथा बाङ्ला साहित्य की क्षति की चिन्ता से अत्यधिक पीड़ित थे। यही दु:ख उनके संघर्षपूर्ण जीवन के शेष अध्याय में उनकी जीवनी-शक्ति के क्रमश: क्षय का कारण बना। जिस पौरुष-दृप्त जीवन-बोध ने किसी समय कवि को गतानुगतिक प्रभावकारी काव्य-रचना के लिए अनुप्राणित किया था, वह चेतना धीरे-धीरे निस्तेज हो चली थी। जब पचास वर्ष की आयु पूरे होने के उपलक्ष्य में ढाका में उनके अनुरागियों ने उन्हें सम्मानित किया (1938) तब उनके द्वारा रचित 'पंचाशतम जन्मदिने' नामक कविता (बाद में 'हेमंत-गोधूलि' में संकलित) से उनके उस उत्तापहीन जीवन-चेतना का परिचय मिलता है। जाति के ह्रासोन्मुख भविष्य से हतोत्साहित होकर वे बाङ्ला जातीय चेतना से अत्यधिक अभिभूत हो गए थे इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर वे रवीन्द्रनाथ के विश्वप्रेम तथा विश्व-मानवता को संदिग्ध दृष्टि से देखते रहे तथा अपनी विभिन्न रचनाओं के माध्यम से उनकी तीव्र आलोचना करते रहे। इसके साथ ही वे विद्यासागर, मधुसूदन, बंकिम तथा विवेकानन्द आदि के स्वजाति-प्रेम को—विशेष रूप से बंकिम की बाङ्ला देश-प्रीति को अपनी रचनाओं में अत्यधिक प्राधान्य देने लगे थे। जातिगत चिंता से मोहितलाल इस सीमा तक हताश हो चुके थे कि उन्होंने इस सत्य को भी अनदेखा कर दिया कि यद्यपि बंकिम बाङ्ला देश तथा बाङ्ला जाति के भविष्य के प्रति अत्यन्त उत्कंठित तथा चिन्तित थे परन्तु उनके हृदय में कहीं गहरे भारत चेतना भी प्रबल रूप में विद्यमान थी। 1940 ईस्वी में बङ्गीय साहित्य परिषद की मेदिनीपुर शाखा के सत्तरवें वार्षिक अधिवेशन में सभापति के रूप में उन्होंने घोषणा की थी, "···इस काल के समस्त साहित्य चर्चा के मूल में जाति की रक्षा के मृत्युंजय मंत्र की आराधना ही प्रमुख होगी।" (परवर्तीकाल में 'जाति जीवन ओ साहित्य' नाम से 'विविध कथा' में संकलित)। बाङ्ला जाति की स्वार्थ रक्षा के प्रति वे इतने अधिक उत्साहित हो गए थे कि उन्होंने न केवल रवीन्द्रनाथ के विश्वमानवतावाद के विरुद्ध, अपितु महात्मा गाँधी के जीवन की उपलब्धि—'अहिंसा का मंत्र' एवं उस आदर्श से प्रेरित कांग्रेस दल के प्रति भी असहिष्णुता व्यक्त की। इस मानसिक असंतोष तथा असहिष्णुता ने उनके मन में गहरी उथल-पुथल भर दी। फलस्वरूप वे अपने चिरपरिचित साहित्य का क्षेत्र छोड़कर राजनीति चर्चा की ओर क्रमश: अग्रसर होते चले गये।

1944 ईस्वी (फाल्गुनी १३५१) से मोहितलाल ने अपनी अत्यंत प्रिय

साहित्यिक पत्रिका 'शनिवारेर चिठि' तथा उस पत्रिका के सम्पादक, पुत्रवत् सजनीकान्त दास के साथ कई आदर्शगत मतभेदों के कारण, सभी सम्पर्क त्याग दिए। लम्बे समय तक जिस लगन एवं मनोयोग से उन्होंने 'चिठि' का संचालन किया था उससे सम्पर्क विच्छेद हो जाने पर अभिमानी मोहितलाल को कितनी ठेस पहुँची थी उसका प्रमाण कवि-मित्र कालिदास राय को लिखित एक पत्र तथा इससे पूर्व उल्लिखित 'आमि ओ शनिवारेर चिठि' (1960 में प्रकाशित) नामक प्रबन्ध है। जातिगत स्वातन्त्र्य तथा बाङ्ला भाषियों की गौरवपूर्ण परम्परा के अनुसंधान में, रोगग्रस्त होते हुए भी मोहितलाल ने जिस अथक परिश्रम एवं कर्मनिष्ठता का परिचय दिया उसका ज्वलंत उदाहरण 'बाङ्लार नवयुग' (1945) तथा 'बाङ्ला ओ बाङ्गाली' (1951) ग्रंथ में निहित है। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजनैतिक कारणों से विपर्यस्त बाङ्ला-भाषियों के आत्मिक शक्ति के विकास के लिए सन् 1947 (1354 श्रावण) से उन्होंने 'बङ्गदर्शन' के तृतीय चरण का सम्पादन शुरू किया। दुर्भाग्यवश यथार्थवादिता से इसका कोई नाता नहीं था, अपनी आदर्शोन्मुखता के कारण ही इस उच्चस्तरीय साहित्यिक पत्रिका के प्रकाशन की अवधि केवल दो वर्ष ही रही। रोग से जराजीर्ण होते हुए भी सन् 1952 से (1359 बैशाख में) उन्होंने 'बङ्ग भारतीय' नामक एक और उच्चस्तरीय मासिक पत्रिका (जिसके सम्पादकीय में अपने ज्ञान तथा विश्वास के अनुरूप वे राजनैतिक विचार भी व्यक्त करते थे) का सम्पादन शुरू किया। इस पत्रिका के तीन अंकों के प्रकाशित होने के पश्चात् असमय उनकी मृत्यु हो गई थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध तथा सन् '50 के दशक में भीषण दुर्भिक्ष के प्रकोप से बंगाल के नैतिक मूल्यबोध का जिस प्रकार विघटन हुआ, उससे स्वदेश तथा स्वजाति प्रेमी मोहितलाल का हृदय उद्वेलित हो उठा। जातीय-जीवन को कलुष-मुक्त करने के अभिप्राय से इस समय उन्होंने विवेकानन्द तथा सुभाषचन्द्र के पौरुष-धर्मी तथा शक्तिशाली व्यक्तित्व को अपनी जाति के सामने अधिकाधिक उजागर किया। राजनैतिक कारणों से दो खंडों में उनके प्रिय बंगाल-प्रदेश के विभाजित हो जाने पर उनके हृदय को गहरी ठेस पहुँची। सन् 1951 ईस्वी में नदीया ज़िले के साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व करते हुए अपने भाषण में उन्होंने अपने हृदयगत विक्षोभ को अत्यन्त आवेशपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया। इस भाषण में हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का स्तर देने के प्रयास की जैसी तीव्र समालोचना उन्होंने की, वैसी ही भर्त्सना उन्होंने पाकिस्तान के सरकार की जो पूर्व-बंगाल के बङ्ग-भाषा के अधिकार को कम करने का पूरा प्रयास कर रहे थे। देश तथा जाति की इस विकृत अवस्था में स्वस्थ साहित्य का सृजन असंभव है। उनका यह मन्तव्य सत्य ही था और समकालीन साहित्य पर एक विहंगम दृष्टि डालने से ही यह स्पष्ट हो जाता है।

पतनोन्मुखी बाङ्ला जाति को सचेतन करने में निरंतर संलग्न मोहितलाल की जीवनी शक्ति क्रमशः क्षय होती रही। क्षण-क्षण घटती जाती प्राण-शक्ति को लेकर अपनी प्रिय बङ्गभूमि, बाङ्ला जाति तथा बङ्ग भाषा की उन्नति के लिए जो अथक प्रयास तथा संघर्ष उन्होंने किया, उसकी तुलना इस देश में वास्तव में दुर्लभ ही है। अन्तर्जगत् तथा बहिर्जगत् में निरन्तर संघर्ष से क्षीण तथा दुर्बल देह उनके प्राणों को अधिक दिनों तक बाँध नहीं पायी। कोरोनरी थ्राम्बोसिस से आक्रान्त 26 जुलाई, सन् 1952 (10 श्रावण, 1359) की रात, प्रेसीडेंसी जनरल अस्पताल के मेकेंजी वार्ड में 64 वर्ष की आयु में उन्होंने प्राण त्याग दिए। उनकी इस अकाल मृत्यु से तत्कालीन साहित्य-जगत् में जो शून्यता व्याप गई थी, उसका आवेगपूर्ण वर्णन अनेक नये-पुराने साहित्यिकों तथा शिक्षाविदों ने उनकी पुण्य-स्मृति में निवेदित श्रद्धांजलि में दिया है।

अगरु की भाँति स्वयं को जलाकर सृजनात्मक तथा समालोचनात्मक साहित्य की समृद्धि के लिए आत्मोत्सर्ग करके भी मोहितलाल को जीवित-अवस्था में समुचित सम्मान नहीं मिल पाया। उनके साहित्यिक सम्मान-लाभ की तालिका अत्यन्त संक्षिप्त है। सन् 1937 में एक बार उन्हें पटना में आयोजित प्रवासी बंग साहित्य सम्मेलन के साहित्य शाखा में सभापति के रूप में तथा सन् 1940 में मेदिनीपुर में आयोजित साहित्य सम्मेलन में मूल सभापति के तौर पर सम्मानित किया गया था। सन् 1951 में नदीया जिले के साहित्य-सम्मेलन में सभापति के भाषण के लिए उन्हें मनोनीत किया गया था। यद्यपि उनके स्वभावगत सत्य-भाषण के लिए कुछ साहित्यकारों तथा साहित्य-गोष्ठियों ने इसका विरोध किया। सन् 1946 में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें 'सरोजिनी पदक' से सम्मानित किया, तथा इस विश्वविद्यालय के द्वारा आमंत्रित किए जाने पर सन् 1949 में उन्होंने 'शरत्-स्मृति' पर भाषण दिया। इसके अतिरिक्त पूर्व एवं पश्चिम बंगाल में कतिपय साहित्य-सम्मेलनों में सभापति की हैसियत से उन्होंने कई मूल्यवान भाषण दिये। उनके साहित्यिक सम्मान-लाभ की तालिका यहीं तक सीमित है।

अपने विश्वास तथा अनुभव के द्वारा उपलब्ध विचारों की प्रतिष्ठा में वे अत्यन्त आग्रही रहे तथा उनका सत्यान्वेषी मन उन्हें अप्रिय-भाषी बनने पर भी विवश कर देता था, इसीलिए मोहितलाल ने अनेक मित्र खो दिए तथा इसमें कोई संदेह नहीं कि इसी कारण उनके अनेक शत्रु भी बढ़ गए। किन्तु उनका बाह्य व्यक्तित्व जितना कठोर प्रतीत होता था, उनका हृदय उतना ही स्नेह-प्रवण कोमल तथा गुणग्राही था, इसका ज्ञान उन्हीं को था जो उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आए थे। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की तरह 'दण्डपाणि साहित्यिक' होते हुए भी जब भी किसी लेखक में प्रतिभा की झलक देखते थे, उसे उत्साहित कर उसके सृजनात्मक शक्ति के विकास में पूरी सहायता करते थे। उनके द्वारा दिया गया

यह उत्साह केवल मौखिक ही नहीं हुआ करता था अपितु उनके लेखन की युक्ति-युक्त समालोचना कर उनकी सृजन शक्ति को सदा जाग्रत रखते थे। जो लेखक रवीन्द्रोत्तर काव्य तथा कथा-साहित्य में रचनात्मक प्रतिभा के लिए विशेष रूप से विख्यात हैं, मोहितलाल ने अपने विस्तृत प्रबन्ध-साहित्य तथा समालोचनाओं में उनकी सराहना करते हुए उन्हें यथोचित स्थान प्रदान किया है। उच्चतर साहित्यिक आदर्श तथा विशुद्ध साहित्यिक परिवेश में जीवन-यापन करने के परिणामस्वरूप मोहितलाल जीवन की कठोर वास्तविकताओं के साथ कभी सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाए। सामंजस्य के इसी अभाव के कारण उन्हें वास्तविक जीवन में अनेक दु:खों एवं विपत्तियों का सामना करना पड़ा था परन्तु शिल्पी-चित्त की आन्तरिक रस-ग्राहिता एवं कालजयी साहित्य-आदर्श के प्रभाव से बाङ्ला काव्य एवं समालोचना के क्षेत्र में उन्होंने ऐसे उच्च मानदंडों की प्रतिष्ठा की जिसकी सीमा का अतिक्रमण आज भी कोई नहीं कर पाया, यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा।

कवि मोहितलाल

रवीन्द्रनाथ की कविताओं के भाव एवं रूप-सौन्दर्य से सम्मोहित कवियों की रचनाएँ अंधानुकरण के कारण वर्तमान शताब्दी के तृतीय दशक तक आते-आते प्राणहीन हो चली थीं। ऐसे समय में काव्य-वस्तु एवं अभिव्यक्ति में स्पष्टता एवं स्वातन्त्र्य लिए मोहितलाल के आविर्भाव ने समकालीन काव्य-रसिक समाज को चकित कर दिया था। मोहितलाल अपने इस स्वर-स्वातन्त्र्य के लिए देशी-विदेशी कुछ कवियों की भाव-चेतना से अनुप्राणित हुए थे या नहीं, यह जिज्ञासा अप्रासंगिक न होगी।

मोहितलाल की प्रारम्भिक रचनाएँ रवीन्द्रनाथ की भाव-तन्मय रोमांटिक प्रेम-सौन्दर्य से अत्यधिक प्रभावित थीं। लेकिन धीरे-धीरे अति यथार्थवादी दैहिक कामना-वासना उस पर हावी होता चला गया। उग्र देह-तांत्रिक भावना के कवि गोविन्ददास के स्थूल देह-सम्भोग की उत्कट इच्छा से आकृष्ट होकर ही शायद मोहितलाल ने देहवादी ऐन्द्रिक भावनाओं को अपनी कविता में व्यक्त किया परंतु इस एकान्तिक देहवादी कवि के भावों से भी कहीं अधिक संतोष शायद अक्षयकुमार बड़ाल की कविताओं में उन्हें प्राप्त हुआ था। इस प्रवीण कवि के सम्पूर्ण काव्य में जिस तंत्रोक्त-पुरुष-प्रकृति तत्त्व का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है, मोहितलाल के समग्र साहित्यिक जीवन में वह एक जीवन्त प्रेरक शक्ति के रूप छाया रहा। देवेन्द्रनाथ सेन के 'देह के रहस्य में बँधे अद्भुत जीवन' का जयगान तथा आत्म-विस्मृत रूप-तन्मयता ने मोहितलाल के तरुण कवि-हृदय को आलोड़ित कर दिया था। सत्येन्द्रनाथ दत्त की भाषा तथा छंद के जादू और जीवन के यथार्थ के प्रति मोह ने भी मोहितलाल की कवि-प्रतिभा को जगाने में काफ़ी हद तक सहायता की। अपने काव्य में अरबी-फ़ारसी के शब्दों के प्रयोग के द्वारा वैचित्र्य-सृष्टि के लिए सत्येन्द्रनाथ के अतिरिक्त शायद नज़रुल के काव्य ने भी उन्हें प्रेरित किया। कदाचित् वे करुणानिधान बन्द्योपाध्याय की रूप-तन्मयता तथा काव्य के सुसंगत आंगिक विन्यास के द्वारा भी प्ररित हुए थे।

विदेशी कवियों में उमर ख़ैय्याम के अतिरिक्त हाफ़िज़ के जीवन-दर्शन ने भी शायद कवि के हृदय में भोगवादी जीवन की विचारधारा को जगाया होगा। अंग्रेज़ी भाषा के कवियों में से यद्यपि टेनीसन, कीट्स तथा लैंड उनके प्रिय कवि रहे लेकिन फिर भी सुईनबर्न के काव्य की अभिव्यंजना, संगीतमयता एवं तीव्र देहवादी जीवन-तृष्णा, मोहितलाल को अधिक आकर्षित करती थी मानव-चित्त के चिरन्तन आवेग अथवा शाश्वत जीवन-यंत्रणा को साकार रूप प्रदान करने में मोहितलाल के कवि-मानस का मैथ्यू-आर्नल्ड के साथ बहुत हद तक सादृश्य है। रोज़ेटी तथा मॉरिस काव्य की प्रसाधन-प्रियता, यथार्थवादी दृष्टि, सौन्दर्य-प्रेम तथा भावावेग की तीव्र अभिव्यक्ति ने भी उनके भाव-प्रवण कवि-हृदय को अवश्य प्रभावित किया होगा। इनके अलावा भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्य कई प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि, कतिपय फ्रांसीसी, जर्मन तथा पाश्चात्य कवियों एवं अरबी, फ़ारसी कवियों की तीव्र भोगवादी कविताओं ने मोहितलाल के स्वच्छन्दतावादी कवि-चेतना के उन्मेष में सहायता की, इसका प्रमाण, समय-समय पर उनके द्वारा इन कवियों की उल्लेखनीय कविताओं के सार्थक अनुवाद द्वारा हमें मिलता है।

कवि रूप में मोहितलाल के सृजनात्मक विकास के स्तर अत्यन्त स्पष्ट हैं। समकालीन अनेक कवियों की भाँति वे भी पहले-पहल रवीन्द्रनाथ के काव्य की रूमानी सौन्दर्य-चेतना से अभिभूत रहे परन्तु इस मुग्धता के आवेश से उबरने में उन्हें अधिक समय नहीं लगा। इस भावावेश के अतिक्रमण के लिए केवल उनकी बौद्धिकता ने ही उनकी सहायता नहीं की, अपितु तंत्रोक्त भोग, मोक्षवादी जीवन-दर्शन ने भी उनकी सौन्दर्य-विलासी कवि-चेतना को रोमांस के जगत् से यथार्थवाद के जगत् में बलपूर्वक आकर्षित किया। 'भारती' गोष्ठी से सम्पर्क तोड़कर अत्याधुनिक कवि-साहित्यिकोंद्वारा चलायी गई 'कल्लोल' एवं 'कालिकलम' पत्रिका के साथ मोहितलाल ने अपना सम्बन्ध क्यों जोड़ा, इसका कारण भी ढूँढ़ने पर शायद इसी में मिल जाए। इन पत्रिकाओं में उन्होंने जिन उग्र देहवादी कविताओं की रचना की, उनमें तन्त्रोक्त देह-साधना की भाषा तक का प्रयोग किया गया है। तन्त्रोक्त पुरुष-प्रकृति तथा भोग-मोक्ष मूलक जीवनवाद ने न केवल उनके काव्य पर बल्कि समग्र साहित्य पर भी गहरा प्रभाव डाला था। तंत्र-तत्त्व से प्रभावित तीव्र देह-चेतनायुक्त कविताओं की रचना के लिए रवीन्द्र-विद्रोही तरुण कवि-समाज ने यद्यपि मोहितलाल की सादर अभ्यर्थना की तथापि उनका कवि-मानस स्थूल देहवाद के स्तर पर अधिक समय तक नहीं टिक पाया। देहवाद को स्वीकारते हुए भी देहातीत आत्मा के अन्वेषण में कवि मोहितलाल की मानस-यात्रा को देखकर रवीन्द्र-विद्रोही कवियों ने उन्हें समझौतावादी कहने में भी दुविधा नहीं की। तंत्रोक्त भोग-मोक्षवादी जीव-उपलब्धि की समग्रता के साधक होने के कारण मोहितलाल अत्याधुनिकों की समालोचना से विचलित नहीं हुए। उपनिषद के

श्रेयवादी जीवन-दर्शन ने भी उनके भाव-गम्भीर कवि-मन को बहुत प्रभावित किया था। भोगवादी जीवन से प्रेरित होकर उन्होंने अगर पाप', 'दिलदार', 'गज़ल गान', 'हाफ़िज़ेर अनुसरणे' आदि कविताएँ लिखीं तो मृत्युंजयी महाजीवन से सम्बन्धित 'महामानव', 'आविर्भाव', 'नव-तीर्थंकर', एवं 'मृत्यु ओ नचिकेता' जैसी गम्भीर भावों से युक्त कविताएँ भी लिखीं। उनकी कवि-चेतना में हृदय की दुर्बलता के लिए कोई स्थान न था। पौरुष-धर्म के जागरण में वे प्रबल उत्साही थे। शिथिल चेतना-युक्त जाति के हृदय में पुरुषत्व को जगाने के उद्देश्य से उन्होंने कवि-जीवन के प्रथम चरण में ही 'बेदुईन' नामक एक लम्बी कविता की रचना की थी, बाद में 'नादिरशाहेर जागरण' तथा 'नादिरशाहेर शेष' नामक प्रसिद्ध नाट्यकाव्यों की रचना की थी। रवीन्द्रनाथ की अनुभूति-प्रवण सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना से मुग्ध काव्य के पाठकों ने मोहितलाल के पौरुषधर्मी काव्य में एक सशक्त स्वातन्त्र्य-प्रेमी कवि को पाया।

1912 में उनको चतुर्दशपदी कविताओं के संकलन के रूप में मोहितलाल का प्रथम काव्य-ग्रन्थ 'देवेन्द्रमंगल' प्रकाशित हुआ था। इस क्षीणकाय काव्य-पुस्तिका में मोहितलाल की स्वतन्त्र कवि-प्रतिभा का कहीं कोई परिचय न मिल पाने के कारण आज पाठकों ने इसे भुला-सा दिया है। सन् 1921 में द्वितीय काव्य-संग्रह 'स्वप्न-पसारी' के प्रकाशित होते ही स्वतन्त्र तथा भावुक कवि के रूप में वे पाठक-समाज द्वारा सादर स्वीकृत हुए। 'स्वप्न पसारी' की अनेक कविताओं में उनकी कवि-चेतना की स्वतन्त्रता साफ झलकने लगी थी परन्तु फिर भी युगोचित रोमांटिक सौन्दर्य-विह्वलता के जगत् से वे तब भी सम्पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो पाए थे। सम्भवतः उन्होंने इस काव्य का नामकरण भी अंग्रेज़ी भाषा के कवि टी. एल. बेडोज़ के 'ड्रीम पेडलरी' से प्रभावित होकर किया था। यद्यपि उनकी कुछ कविताओं में रूमानी भावों की अधिकता है परन्तु इनमें से बहुत-सी कविताओं में मोहितलाल के पौरुष-पूर्ण अनुभूतियों की संयमित अभिव्यक्ति भाव-ग्राही कवि रवीन्द्रनाथ की दृष्टि से भी छुपी न रह सकी। 'स्वप्न पसारी' प्रकाशित होने के छः वर्ष पश्चात् 1334 बंगाब्द (ई. 1927) प्रवासी में 'साहित्ये नवत्व' नामक निबंध में मोहितलाल के कवि रूप में प्रसिद्धि का कारण बताते हुए उन्होंने कहा—

> "उनके काव्य का अकृत्रिम पौरुष ही उनकी ख्याति का कारण है।···इस पौरुष में शक्ति का आडम्बर नहीं है, शक्ति की मर्यादा है, साहस है बहादुरी नहीं।"

मोहितलाल की मृत्यु के पश्चात् 'भारवि' में प्रकाशित मोहितलाल की श्रेष्ठ कविताओं की भूमिका में सशक्त कवि प्रेमेन्द्र मित्र ने सन् 1956 में विचार व्यक्त करते हुए कहा—

"रवीन्द्रनाथ के जीवनकाल में ही उनका अमोघ प्रभाव दिखाई देने लगा था—

उनकी उपेक्षा करते हुए नहीं अपितु उन्हें आत्मसात् करते हुए, बाङ्ला काव्य में नवीन एवं स्वतन्त्र रस की यदि किसी ने सृष्टि की है, तो वे निसंदेह कवि मोहितलाल ही हैं।···उनकी संयत तथा संयमित शक्ति ने कभी आत्मश्लाघा का रूप नहीं धारा, परंतु बाङ्ला काव्य की रीति और प्रकृति को सर्वप्रथम उन्होंने ही जड़ से हिलाया था।"

'स्वप्न पसारी' में संकलित रोमांटिक सौन्दर्य चेतना के आवेग से पूर्ण कविताओं में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—'स्वप्न पसारी', 'चोखेर-देखा', 'बसन्त आगमनी', 'चूत मंजरी', 'श्रावण-रजनी', 'चूड़ीर आवाज', 'भादोरेर बेला', 'तारका ओ फूल', 'कलस-भरा', 'घरेर बांधन', 'ईरानी', 'शेष-शज्जाय नूरजहाँ' आदि। चाहे नारी के देह-सौन्दर्य का उपभोग हो अथ ः प्रकृतिगत सौंदर्य के समुद्र में अवगाहन, मोहितलाल की गहरी मर्त्य-प्रीति तथा तीव्र जीवन-पिपासा ही उनके दुर्निवार सौन्दर्य-प्रेम का उत्स था। 'स्वप्न पसारी' की अन्तिम कविता 'कामना' में इन दोनों ही प्रवृत्तियों को प्रबल विश्वास के साथ सशक्त एवं सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया गया है :

माटी की पृथ्वी विदारण कर शत् मुखों में शत् रस
स्नायु में, शोणित में सोख लूंगा, होने दो अपयश।

आकाश में जलते हैं तारे जैसे, जलने दो इस असीम रात्रि को
उसकी ओर निहार भयभीत हो, नहीं चाहता करता अमृत पान मैं,
धरा का फूल बार-बार हंसता है और रोता है बार-बार
अंधकार आलोक में, शिशिर में, किरण में, उसका साथी बनूंगा मैं।

उपर्युक्त प्रबल भोग-वासना, अतृप्त जीवन-प्रेम तथा गहरी मर्त्य-प्रीति इससे पूर्व सशक्त रूप में 'कल्लोल' में प्रकाशित 'प्रेतपुरी' नामक कविता में तथा 'काली-कलम' में प्रकाशित 'नागार्जुन' कविता में अभिव्यक्त हुई थी (परवर्तीकाल मे 'हेमन्त गोधूलि' काव्य में संकलित)—

चंचल कबरी और नीविबंध के बीच
पा लूंगा बंकिम ठोर जहां जितना मिल जाये
खोज लिया उन्होंने सर्वप्रथम व्यग्र जन-जन
अतनु के तनु-तीर्थ में—लावण्य लीला-निकेतन में। (प्रेतपुरी)

मैं काम-पुजारी, हे महेश ! देहचक्र में किया नाड़ी-चक्र भेद,
हृत्-पिण्ड छिन्न कर सीखा मैंने मंथन का महा आयुर्वेद।

धन्य होऊंगा उस दिन, एक ही रूप में भोगूंगा उभय को
कुलवधू यशोधरा और नगर वधू वसंत-सेना को। (नागार्जुन)

यद्यपि इन कविताओं में विदेशी कविता की प्रतिच्छाया सुस्पष्ट है तथापि तांत्रिक देह-साधना के आदर्श पर आधारित कवि की भोग-कामना इन दो कविताओं में अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं।

'स्वप्न पसारी' की 'अघोरपंथी' कविता में कवि की तीव्र जीवनासक्ति तांत्रिक देहवादी साधना का सहारा लिए प्रबल आवेग के साथ काव्य रूप में परिणत हुई है—

"शीशे के प्याले तोड़ दो तुम सब, अधरों से लगा लो
श्मशान की माटी से सनी देह—मृतक का कपाल।
भावों के बुद्बुद् से उन्मत्त, वासना के रंग से रंजित,
नीर नहीं वह्नि-सम प्रवाहित, सुरासक्त हो,
मृतक का खप्पर उठा, उपहास करो मृत्यु का।(अघोरपंथी)

तांत्रिक की वीराचारी साधना की पटभूमि में मृत्युञ्जय तथा जीवन के उपभोग का उन्माद आधुनिक बाङ्ला काव्य के लिए एक अभिनव घटना थी जो रवीन्द्रनाथ की मृत्यु-माधुरी की उपलब्धि के बिलकुल विपरीत दिशा में अवस्थित थी। 'पाप' कविता में उन्होंने बुद्धिवादी युक्ति की सहायता से देहवादी जीवन के संभोग का मुक्त कंठ से समर्थन किया। यौवन की अनियंत्रित देह-कामना के फलस्वरूप सृष्टि में सौन्दर्य के जो फूल प्रस्फुटित होते हैं, बुद्धिवादी कवि मोहितलाल ने उसे पाप कहने से अस्वीकार कर दिया। तंत्र-तत्त्व से उद्दीप्त मोहितलाल के अनुसार देह-संभोग वीरोचित धर्म था। निःस्व, दुर्बल, उत्ताप-हीन प्राणों से युक्त व्यक्ति इस जीवनोत्सव में कभी भी आमंत्रित नहीं होते।

इस प्रभावशाली जीवन-बोध ने मोहितलाल के स्वतन्त्रता प्रेमी कवि-हृदय में पौरुष-जन्य शक्तिशाली व्यक्तित्व का उत्तरोत्तर विकास किया। 'बेदुईन' तथा 'उच्चैःश्रवा' कविताओं में उन्होंने न केवल अधीर, चंचल तथा उच्छ्वसित प्राणों से युक्त जीवन का जयगान किया अपितु इतिहास-तिरस्कृत नादिरशाह की पाशविक रक्त-पिपासा तथा निष्ठुर लुंठन प्रवृत्ति में उन्होंने पुरुष की अपराजेय पौरुष के ज्योतिर्मय प्रकाश को भी देखा—

फेंक दो गुलाब की माला! तोड़ दो प्याला भी!
नादिर! नादिर! केवल इसी सुर में गा सको तो गाओ फिर से!

बरछे के फल पर चमक उठी मधुर रक्त-रेख,
छाया मेरी पड़ी है पीछे—जितनी दूर पड़ी देख।
काबुल-कन्धार
गज़नी हिरात दिल्ली में चारों ओर है हाहाकार।
(नादिरशाहेर जागरण)

अब प्रश्न उठता है कि, एक हत्यारे का समर्थन कर क्या मोहितलाल ने मानवता की उपेक्षा नहीं की? वास्तव में इस कविता में पौरुष-धर्मी कवि की सहानुभूति को नादिर की क्रूर और नृशंस हत्या की प्रवृत्ति ने नहीं बल्कि मनुष्य की शक्ति की भेद-पूर्ण अभिव्यक्ति ने आकर्षित किया है। अरबी-फ़ारसी के शब्दों के सुनियोजित प्रयोग से, भावानुकूल भाषा की वज्र-दीप्ति से, आकांक्षित जीवन-चेतना की सृष्टि के कारण समकालीन काव्य-जगत् में यह कविता अप्रतिम है।

मनुष्य की शक्ति-लीला को अपने ज्ञान तथा विश्वास के अनुसार युक्ति-संगत जीवन-तत्त्वों पर प्रतिष्ठित करते हुए मोहितलाल ने परवर्तीकाल में 'जीवन-जिज्ञासा' पुस्तक के 'मन-मर्मर' अंश में अपने विचार व्यक्त किये थे :

> "भोग और त्याग दोनों में ही शक्ति की आवश्यकता है, इस शक्ति के मूल में है 'अहम्' का संस्कार, आत्म-प्रतिष्ठा की कामना। ···यही वास्तविक शक्ति है, वह रजोगुण है, वह नैतिक या अनैतिक नहीं, क्योंकि शक्ति तो सर्वत्र शक्ति ही मानी जाएगी···शक्ति का कोई गुण-भेद नहीं।"
>
> (मनमर्मर, पृ० 265)

कुछ कविताओं एवं नाट्य-कविताओं में इस पौरुष-मय जीवन-दर्शन को मोहितलाल ने अभिव्यक्त किया है तथा इन्हीं के आधार पर रवीन्द्र-युग के कवि-समाज में वे स्वतन्त्र रूप से प्रतिष्ठित हुए।

इसके अतिरिक्त भी 'स्वप्न पसारी' में निसर्ग-चेतना, व्यक्ति-प्रशस्ति, मृत्यु-चेतना, जन्म-जन्मान्तर में विश्वास इत्यादि अनेक विषयों से सम्बन्धित कविताएँ हैं जो कवि-मन के सहज आवेग से प्रेरित हैं। इस प्रकार की कविताएँ उनकी शिल्पी-सुलभ शब्द-चेतना, ध्वनि-संगीत-सृष्टि नैपुण्य एवं रोमांटिक सौन्दर्य-भावना की दृष्टि से परम रसात्मक होते हुए भी कवि स्वातन्त्र्य के रूप में नितान्त परिचय-विहीन हैं। किसी-किसी कविता में रवीन्द्रनाथ, देवेन्द्रनाथ सेन, सत्येन्द्रनाथ दत्त तथा नजरुल इस्लाम का गौण प्रभाव परिलक्षित होता है। परन्तु इस काव्य की किसी-किसी नाट्य-धर्मी कविता में ब्राउनिंग की नाटकीय स्वगतोक्ति का अनुकरण करते हुए उन्होंने वातावरण तथा कविता की भाषा को वैसी सजीवता प्रदान की थी, उसकी तुलना उस युग में सुलभ नहीं थी। 'स्वप्न पसारी' की कुछ भावावेग-पूर्ण रोमान्टिक कविताओं में मोहितलाल ने जिस परम आस्वाद भाव तथा रूप-जगत् की सृष्टि की, उनमें स्वातन्त्र्य के चिह्न दिखाई नहीं देते। जिन उग्र यथार्थवादी कविताओं में उनकी आत्म-शक्ति अभिव्यंजित हुई है, उनके कवि-स्वातन्त्र्य का परिचय भी उन्हीं में निहित है।

'स्वप्न पसारी' के पाँच वर्षों बाद सन् 1926 में उनका परवर्ती काव्य 'विस्मरणी' प्रकाशित हुआ। (कवि की 33 से 38 वर्ष की आयु में रचित कविताओं का संकलन) इस काव्य में कवि के भाव-स्वातन्त्र्य तथा वाणी-भंगिमा

को जैसी सघन एवं सशक्त अभिव्यक्ति मिली, वह समकालीन काव्य-जगत् में तो दुर्लभ है ही, यहाँ तक कि मोहितलाल के अन्यान्य काव्यों में भी वह सुलभ नहीं। इस काव्य की कुछ सशक्त जीवनवादी तथा दर्पयुक्त भंगिमा में स्वरबद्ध रसोज्ज्वल कविताओ के कारण ही उस युग के नवीनतावादी अति आधुनिक कवियों ने मोहितलाल को आधुनिकों में सर्वोत्तम माना।

इसमें भी पूर्ववर्ती काव्य-संग्रहों की ही भाँति विभिन्न रसों से युक्त कविताएँ संकलित हुई हैं। परन्तु कई कविताओं में अभिव्यक्त बलिष्ठ भोग-कामना, अभिनव जीवन-जिज्ञासा तथा स्वातन्त्र्य-प्रेम के कारण ही मोहितलाल को तत्कालीन काव्य-रसिक समाज ने सोत्साह अभिनन्दित किया। रोमांटिक चेतना की अन्तर्धारा इस काव्य मे भी अबाध रूप से प्रवाहित है; लेकिन शास्त्रीय पद्धति के संयत बन्धन के कारण भावोच्छ्वास भी संयत तथा संहत है, कवि-कल्पना भी निर्दिष्ट पथ का अनुसरण करती है। संक्षेप में कहा जाए तो भाव-चेतना को रूप प्रदान करने में निपुण शिल्पी की मिताक्षर-सघनता इस काव्य में स्वतःस्फूर्त है।

'विस्मरणी' काव्य के अनन्य उत्कर्ष के मूल में एक ओर जहाँ काव्य भाषा में अलंकरण-नैपुण्य का स्थापत्य निहित है, वही दूसरी ओर 'प्राण-पुरुष की एकांतिक विह्वलता प्रसूत' (मोहितलाल) विशिष्ट जीवन-तत्त्व की प्रतिष्ठा भी है। हृदय के अन्तर्मन में निहित आवेग और आकुलता की प्रेरणा से जिस प्रकार यह काव्य भाव-गम्भीर बन पड़ा है, उसी प्रकार प्राण और मन के निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व से युक्त कुछ कविताएँ सजीव चेतना से स्पन्दित हैं। इस अन्तर्द्वन्द्व की परिणति 'स्मर-गरल' तथा 'हेमन्त-गोधूली' जैसे परवर्ती काव्यों में दृष्टिगत होती है। कुछ कविताएँ कवि-प्राणों की अंतरंग कामना के गीतात्मक सुर के अनिर्वचनीय झंकार से समृद्ध हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि इन काव्यों में मैथ्यू आर्नल्ड की भाव-गम्भीरता के साथ सौन्दर्य-स्रष्टा कवि के संवेदनशील चित्र का सहज आनन्दमय स्वर भी घुल-मिल गया है। सुकवि विजयचन्द्र मजुमदार ने इस काव्य के प्रकाशित होने के थोड़े ही दिनों बाद ही 1334 के 'बंगवाणी' पत्रिका में लिखा था : 'जो कवि रूप के साथ रस का, सम्भोग के साथ संयम का, प्रज्ञा के साथ कल्पना का, गम्भीरता के साथ निविड़ता का, छंद के साथ गद्य का, हृदय के साथ कला का ऐसा मिलन करवा सकते हैं, उन्हें क्या सहज ही भुलाया जा सकता है।"

इस काव्य-संग्रह में कवि की रूमानी भावनाओं से युक्त व्यक्तित्व का मधुर सौरभ बिखरा हुआ है—'मानस-लक्ष्मी', 'मृत्यु-शोक', 'बाँधन', 'पथिक' एवं 'विस्मरणी' आदि। आत्म-विस्मृत रूप-तन्मयता से युक्त कविताएँ हैं—'व्यथार आरति', 'अकाल सन्ध्या', 'नूरजहाँ ओ जहाँगीर', 'दीपशिखा', 'अग्नि-वैश्वानर', 'माधवी', 'कन्या-शरत', 'शिउलिर बिये', 'बादल रातेर गान', 'घूघुर डाक', आदि कविताएँ प्राकृतिक सौन्दर्य के माधुर्य से युक्त रोमान्टिक कविताएँ हैं। इन तीन

प्रकार की कविताओं के अतिरिक्त चौथी प्रकार की कुछ कविताएँ जीवन-प्रेमी कवि की भोगवादी कविताएँ जो तीव्र भावावेग से परिपूर्ण हैं—'स्पर्श-रसिक', 'मोहमुद्गर', 'पांथ', 'शव-संगीत', इत्यादि। 'काला पहाड़' नव-मानवता की प्रेरणा से दीप्तिमान सशक्त भाव चेतनामय कविता है। इसके अतिरिक्त मृत्यु तथा सुइनबर्न के प्रति निवेदित दो अन्य कविताएँ भी हैं।" केवल पाँच सौ चुनी हुई कविताओं का संकलन होते हुए भी इस काव्य ने आधुनिक बाङ्ला काव्य-जगत् में उल्लेखनीय स्थान प्राप्त किया।

'विस्मरणी' की देहवादी कविता में अभिव्यक्त भोगवाद में डूबे हुए कवि की कामना-वासना-वेदना के करुण स्पर्श से कवि का हृदय उद्वेलित हो उठा। 'विस्मरणी' तथा 'शव-संगीत' कविताओं में इसी उद्वेलित भाव को सस्वर रूप प्रदान किया गया है। परन्तु इन काव्यों में अन्त: तथा बाह्य, भाव तथा वस्तु के द्वन्द्व से मुक्त होकर वे शीघ्र ही तेजोद्दीप्त जीवन के यथार्थ और अनुभव के क्षेत्र में आ गए। देह बिना आत्मा की उपलब्धि असम्भव है—इस भाव-चेतना ने कवि-हृदय में जिस दृढ़ विश्वास को जन्म दिया, 'स्पर्श रसिक', 'मोह मुद्गर', 'पांथ' आदि सुप्रसिद्ध कविताओं में उसका ठोस प्रमाण मौजूद है। 'स्पर्श रसिक' कविता में अंधे व्यक्ति के माध्यम से देह-भोग की आत्म-विस्मृत कर देने वाले आनन्द की तीव्र भावावेग से पूर्ण अनुभूति को कवि ने अपूर्व स्वर प्रदान किया है। बुद्धिवादी कवि ने 'मोहमुद्गर' कविता में निर्द्वन्द्व भाव से देहवाद को सशक्त काव्य-रूप प्रदान किया है। देहवादी कवि ने उपरोक्त कविता में रवीन्द्रनाथ के कल्पना-विलास तथा देहोत्तर सौन्दर्य-चेतना पर भी कठोर प्रहार किया है। कवि की देह-कामना का उन्मत्त उल्लास कविता के निम्नलिखित अंश में प्रतिध्वनित है:

देह-भर करो पान यह प्राणों की गुनगुनी मदिरा,
धूल में पैठ पा लो, कामना का कंचन मणि हीरा।
सारा अन्न बटोर लेंगे हम कंगालों की तरह
धरा के स्तन-युगल कर देंगे क्षत-विक्षत
भरपूर शोषण से, क्षुधातुर वंश के आघात से
करेंगे जर्जर
हम बर्बर।" (मोहमुद्गर)

इस वासना-कामनामय जगत् से एक दिन विदा लेनी होगी, इस विचार ने कवि के हृदय में जिस वेदना की सृष्टि की है उसका आवेग-भरा रूप निम्न पंक्तियों में उद्धृत है:

कोटि-जीव कल्लोलित इस जीवन-वारिधि बेला में
मेरी आंखों में आंसू की अविरल धार।

इस चिर-सौन्दर्य के रूप हरम में लौट पाऊँगा फिर ?
कक्ष-कक्ष में हैरानी से खोलूंगा क्या फिर इन्द्रिय द्वार ?

(मोहमुद्गर)

कोमल गीतिमय काव्य-भाषा के जगत् में 'मोहमुद्गर' के कवि का तीव्र देहानुराग एवं गम्भीर तथा सुनिर्वाचित शब्दों के कुशल प्रयोग से समकालीन काव्य-प्रेमी समाज मोहितलाल की कवित्व-शक्ति के प्रति एकबारगी विस्मित हो श्रद्धानत हो गया था।

नारी विद्वेषी दुःखवादी दार्शनिक शोपेनहावर को सम्बोधित कर रचित 'पांथ' नामक दीर्घ कविता में निर्द्वन्द्व देहवादी जीवन-प्रत्यय को मोहितलाल ने जो मननशील स्वर प्रदान किया, वह समकालीन काव्य-जगत् में अतुलनीय था। इसमें संदेह नहीं कि उस युग में रवीन्द्रनाथ के देहातीत रोमान्टिक सौन्दर्य-चेतना के विरुद्ध मुक्त कंठ से देहवाद के समर्थन द्वारा स्वातन्त्र्य-प्रेमी कवि की गूढ़ उपलब्धि तथा उसकी स्पर्धा युक्त घोषणा ने ईंधन का काम किया। इस प्रकार की कविताओं के अन्तर्गत आनेवाली कविताओं की पंक्तियाँ उद्धृत हैं :

उसके मृत्युनील नेत्र ! अधरों पर खेलती मुस्कान
विस्मृत रश्मि-राग ! कोख में जन्म राजधानी
उरस की अग्निगिरि सृष्टि का उत्ताप उत्स !
जानता हूँ, मैं यह जानता हूँ !

अथवा,

सत्य है कामना केवल—मिथ्या चिर मरण-पिपासा !
देहहीन, स्नेहहीन, अश्रुहीन बैकुण्ठ है स्वप्न !
यमद्वार हो या वैतरणी, वहाँ नहीं अमृत की आशा
लौट आता बार-बार धरा का नित्य निमन्त्रण !

मोहितलाल ने इस सत्य को बिना किसी दुविधा के स्वीकारा है कि यह तीव्र मर्त्यप्रेम सत्ता की गहराई में जिस उद्वेलन को जन्म देती है, क्रियाशील दुर्निवार देहकामना ही उसका उत्स है। नारी के देह-मन के दुर्निवार आकर्षण से ध्यानमग्न महादेव का भी व्रत भंग हुआ था—मोहितलाल ने इस भावानुषंग को अपूर्व चित्रात्मकता तथा कल्पना के माध्यम से अनुपम काव्य रूप प्रदान किया है।

'काला पहाड़' कविता में सर्व-संस्कार-मुक्त मानव के महात्म्य बोध को वज्र-घोषपूर्ण कवि-भाषा में जो सबल अभिव्यक्ति मिली, वह केवल समकालीन ही नहीं अपितु समग्र बाङ्ला काव्य-जगत् में दुर्लभ है :

असि-फल पर अशनि की चमक, पिघल गये सारे त्रिशूल शिखर।
भैरव-रव से मूच्छित धरा, व्योम-मंडल शायद जाते बिखर-बिखर।

कहाँ पिनाक डमरू कहाँ ? कहाँ चक्र सुदर्शन ?
मनुष्य से अभयदान माँगते मन्दिरवासी अमर-गण !

नहीं ब्राह्मण म्लेच्छ यवन नहीं, भगवान-भक्त नहीं
युगों-युगों से केवल मानव है रे, मानव के सीने में रक्त चाहिए।

इस प्रकार के तीव्र आवेग से युक्त उच्छ्वास, चित्रात्मकता, शब्द-विन्यास तथा सर्वोपरि सर्व संस्कार-मुक्त मानव-प्रेम की आवेगपूर्ण अभिव्यक्ति, केवल समकालीन नजरुल के काव्य के अतिरिक्त अन्य कहीं दृष्टिगोचर नही।

'नूरजहाँ ओ जहाँगीर' कविता में कल्पना का आश्रय लेकर इतिवृत्तात्मक कथा (इमेजिनेटीव इन्टरप्रेटेशन) निःसंदेह मोहितलाल की सृजनात्मक प्रतिभा का परिचायक है। 'सुईनबर्नेर अनुसरणे' कविता प्रशस्तिमूलक होने के साथ ही मोहितलाल के निजी काव्यादर्शों की घोषणा करती है।

इस काव्य के अन्तर्गत 'नवतीर्थंकर' तथा 'मृत्यु ओ नचिकेता' कविता में कामना-वासना के जगत् को पीछे छोड़ कवि ने लोक-हितकारी आत्म-त्यागी महा-जीवन के अन्तर्लोक में तथा अमृत-तत्त्व अन्वेषी उपनिषदीय भावना के क्षेत्र में प्रवेश किया। विस्मरणी काव्य मे कवि-मानस में उत्पन्न भावों का अतर्द्वन्द्व दृष्टि-गत होता है—एक ओर इस जीवन को सर्वस्व मानते हुए भोगवादी जीवन-चेतना है तो दूसरी ओर स्थूल भोग-वासना से मुक्त आत्मा के अमरत्व से सम्बद्ध महा-जीवन का महिमा बोध है। विज्ञ कवि की इस द्वंद्व-युक्त काव्य-भावना का समन्वित रूप उनके विशिष्ट काव्य 'स्मरगरल' में देखा जा सकता है।

'विस्मरणी' के पश्चात् सन् 1931 से सन् 1935 के बीच किशोरों के लिए रचित कुछ कविताएँ 'रूपकथा' नामक ग्रंथ में (1352 बंगाब्द में) प्रकाशित हुई। दो शिशु-कन्याओं की अकाल-मृत्यु से मर्माहत पितृ-हृदय की करुण वेदना ही इस काव्य-रचना का उत्स है। कवि-कल्पना का माधुर्य तथा स्वर-लय की सुन्दर भंगिमा की दृष्टि से यह काव्य अक्षुण्ण होते हुए भी भाव-गाम्भीर्य के कारण इसमें संकलित कविताएँ किशोरोपयोगी नहीं बन पायीं। उपरोक्त काव्य गहरे दुःख तथा वेदना से आहत कवि की कल्पना का परिणाम है, अतः पूर्वापर काव्यों के साथ इसकी कोई समानता नहीं है।

'विस्मरणी' के दस वर्ष पश्चात् सन् 1936 में मोहितलाल द्वारा रचित 'स्मरगरल' प्रकाशित हुई। उस समय कवि की आयु अड़तालीस साल की थी। इन कविताओं की रचना पिछले सालों के दौरान की गई थीं। 'स्मरगरल' में कवि की अतृप्त जीवन-जिज्ञासा न केवल संयत हो चली थी प्रत्युत वह सम्पूर्णतया भिन्न दिशा में प्रवाहित थी। यद्यपि रूप-तन्मय कवि की सौन्दर्य-पिपासा अब भी अबाध रूप से विद्यमान थी तथापि अंतर्मन की आकांक्षा रूप-जगत् का अतिक्रमण कर

गम्भीर सत्योपलब्धि के जगत् में प्रवेश कर चुकी थी। देहाश्रित प्रेम-पिपासु कवि देहातीत जीवन के साम्राज्य में आत्मा की परितृप्ति का उपाय खोज रहे थे। दुःखों की महिमामय उपलब्धि ने कवि को चेतना के सम्पूर्णतया भिन्न स्तर पर ला खड़ा किया था। अंतर्द्वन्द्वों से विक्षुब्ध उनके हृदय के लिए नैसर्गिक जगत् की शान्ति ही परम आश्रय-स्थली बन गई। अहंकार-स्फीत कवि की आत्मा किसी वृहत्तर मानव-आदर्श के जगत् में मुक्ति ढूँढ़ने लगी थी। सचेतन मन से देहातीत, स्पर्शातीत, अनुभव-गम्य मुक्ति की पिपासा! क्या यह देहवादी कवि का क्षणिक अवसाद मात्र था? शायद नहीं। कदाचित्, स्वातन्त्र्यतावादी कवि ने जीवन के इस स्तर पर बुद्धिवादी जीवन के आलोचक की भूमिका अपना ली थी। इसके अतिरिक्त जीवन की किसी गूढ़ उपलब्धि ने उनके कवि-मन में यह परिवर्तन किया होगा। यदि इस उपलब्धि को तंत्रोक्त भोग-मोक्षमूलक जीवन-प्रत्यय कहा जाए तो आपत्ति का कोई कारण नहीं होना चाहिए। जो कवि कभी भोगवाद का प्रबल समर्थक था, परिणत जीवन-जिज्ञासा से प्रेरित हो ऐन्द्रियता तथा देहवाद के स्तर से ऊपर उठकर देहात्मवाद के जगत् मे प्रवेश करना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। इस ज्ञान तथा विश्वास से युक्त जीवन-दर्शन ने भावों के अंतर्द्वन्द्व से विक्षुब्ध कवि के हृदय को केवल गहरी शान्ति ही प्रदान नही की बल्कि 'स्मरगरल' की कविताओं को सुदृढ़ आंगिक सौन्दर्य भी प्रदान किया है। जीवन-प्रत्यय की उपलब्धि ही काव्य-वस्तु होने के कारण कवि की भाषा भी संयत तथा गम्भीर भावों के प्रकाश से दीप्तिमान है—यह तो स्वाभाविक ही है।

देह के मध्य देहातीत आत्मा के अन्वेषण की उत्कंठा ने किस परिमाण में इस काव्य में भाव एव कलात्मक सौन्दर्य की अद्‌भुत परिणति प्राप्त की है, यह स्पष्ट रूप से यहाँ देखा जा सकता है। 'स्मरगरल' नामक कविता में—

मेरी प्रीति देह-रीति अवश्य फिर भी वह है विपरीत
भस्म-भूषण काम के कुहक में वशीभूत स्मरजित।

—उपरिलिखित पंक्तियाँ काव्य-सुषमा से रहित कवि-प्रत्यय की अभिव्यक्ति मात्र है। किन्तु इसी कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ कवि-जीवन की उपलब्धि के स्पर्श से भाव-गम्भीर होने के कारण अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं:

भोग के भवन में रोती कामना
लाखों-युगों से नयन अतृप्त
देह में ही देहातीत यह किसका क्रन्दन संगीत। (स्मरगरल)

देहाश्रित जीवन में देहातीत आत्मा का स्पर्श पाने की व्याकुल मन की पीड़ा ही 'स्मरगरल' काव्य का मूल स्वर है। यह स्वर रवीन्द्रनाथ की देहोत्तर चेतना से बिलकुल भिन्न है। 'देवदासी' कविता में देह और आत्मा के द्वन्द्वयुक्त जीवन की त्रासदी मर्मस्पर्शी काव्य-सौन्दर्य के रूप में विकसित हुई है:

बजे करताल, बजा मृदंग
नाच उठे मेरे सकल अंग
प्राण नहीं, फिर भी गाता हूँ गान
सृष्टि की पहेली (देवदासी)

प्राण-चेतना शून्य देहाश्रित रूपमोह से मुक्त करने के लिए कवि ने प्रलय के देवता महाकाल का आह्वान किया है—मानो वे सत्य-बोध के तीक्ष्ण अस्त्र द्वारा सौन्दर्य का ध्वंस करते है, और आत्मा के ज्योतिमय आलोक में उन्हें जगाते हैं। 'रुद्रबोधन' कविता में 'सुंदर पर मारो सत्य का शूल तोड़ो स्वप्न हे निर्दय'—यह आकांक्षा 'विस्मरणी' के 'सत्य केवल कामना ही' अथवा 'नहीं चाह सत्य की, करता हूँ सुन्दर की उपासना' आदि आकांक्षाओं से सर्वथा विपरीत-धर्मी है। सौन्दर्य के प्रति अनुराग तथा सत्य-बोध के द्वन्द्व के कारण 'स्मरगरल' के युग में कवि जीवन में सत्य के अन्वेषण की ओर प्रवृत्त हो गए थे। इस सत्यान्वेषी विचार से प्रेरित होकर मोहितलाल ने 'बुद्ध' नामक प्रसिद्ध कविता में महात्मा बुद्ध के निवृत्ति मार्ग की युक्तिसंगत समालोचना की है :

प्राण-हत्या करने का भला किसने दिया तुम्हें अधिकार ?
उससे भी क्रूर क्या वह—तैमूर का लक्ष जीव नाश ? (बुद्ध)

महात्मा बुद्ध के दुःखवादी जीवन-दर्शन एवं निर्वाण-साधना की समालोचना कर जीवन-प्रेमी कवि मोहितलाल मनुष्य के कामना-वासना के जगत् में फिर लौट आते हैं :

देह मिथ्या, प्राण मिथ्या, सत्य एक मात्र दुख ही ?
वासना में है विष ? साथ है विषैली दवा
अमृत वल्लरी है वह संजीवनी विस्मरणी सुधा
काम का ही वह भिन्न रूप...नाम उसका जानते है सब; (बुद्ध)

एक ओर जीवन के सत्य की खोज तो दूसरी ओर विमुग्धकारी सौन्दर्यानुराग —इन दोनों के द्वन्द्व से कवि-हृदय विचलित था। ऐसी स्थिति में भी सत्यान्वेषक कवि-चित्र से रोमांटिक सौन्दर्यानुभूति पूर्णतया समाप्त नही हो पायी थी। 'मिलनोत्कण्ठ', 'रूपमोह', 'रत्ति ओ आरति', 'चाँदेर बासरे', 'निशिभोर', 'प्रेम ओ जीवन' आदि 'स्मरगरल' की रूप-सौन्दर्य से युक्त कविताओं में इसका ज्वलन्त प्रमाण हमें मिल जाता है। लेकिन विशुद्ध सुख तथा देह सौन्दर्य के संभोग से कवि-आत्मा को तृप्ति नहीं मिल पा रही थी, वैष्णव कवि के समान ही मोह-मुक्त कवि कह उठते हैं :

मेरी कामकला—केलि उल्लास
नहीं मिलन का मिथुन विलास,

मैं तो वधू को अंक में ले रोता जितना ही
निहारता उसका मुख। (स्मरगरल)

भक्त कवि गोविन्ददास की गहन जीवन-उपलब्धि से प्रभावित हो यौवन की आवेगपूर्ण उन्मत्त देह-कामना तथा प्रेमोन्माद से युक्त कवि-हृदय में एक नवीन जीवन-बोध की चेतना ने जन्म लिया :

वह चपल प्रेम, स्थिर यह जीवन दुरन्त असह्य।
(प्रेम ओ जीवन)

जीवन चपल है, अतः प्रेम की गति भी चंचल है। जीवन तथा प्रेम की गतिशीलता का ज्ञान हो जाने पर कवि की दृष्टि में अब यौवन का रूप-रस-रंग सब सजीवता से रहित है। 'वसन्त-विदाय', 'चाँदेर वासर', 'दिन शेषे', निर्वाण', 'शेष शिक्षा', 'विषय वासना', 'शेष आरति', 'प्रेम ओ फूल', 'निशुति', 'विदाय' आदि कविताओं में यौवन के प्रेम-सौन्दर्य जगत् से विदा लेते हुए कवि का हृदय वेदना से भर उठता है। 'निशुति' सॉनेट में कवि ने बिना किसी दुविधा के कह ही डाला :

यौवन देह की व्याधि, रूप मानो उसी का विकार।

किन्तु इस नेतिवादी जीवन-दर्शन से जीवन-प्रेमी कवि 'स्मरगरल' में संतुष्ट नहीं रह पाए थे। प्रकृति के चिरंतन स्वरूप तथा उसके अविनाशी सौन्दर्य में इस भाव-संकट में कवि के प्राणों को आश्वस्त किया। जनमानस के लिए अबोध्य सृष्टि के रहस्यात्मक आभास में कवि की चेतना को वृहत्तर जीवन और उदात्त सौन्दर्य से पुष्ट किया :

मिला मुझे उजाले का आभास
अब सोने दो, कुछ और न चाहिए मुझे। (नतून आलो)

'स्मरगरल' काव्य में अहंकार-मुक्त कवि उदात्त जीवन तथा जाति की कल्याण कामना के लिए सचेत हो उठे थे—बंग लक्ष्मी, आह्वान, रूपर्ट ब्रुक, विवेकानन्द, शरतचन्द्र, एक आशा आदि चतुष्पदियों में यह भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। 'निशान्ते' नामक कविता में संकीर्ण 'अहम्' बोध के जगत् से वृहत्तर मानव-चेतना के जगत् में संचरण का आभास मिलता है। 'पयार' सॉनेट में कवि की 'शैली' सचेत है। कवि के विचारानुसार यद्यपि काव्य में नृत्य-चपल छंदों की झंकार पाठकों को अधिक रुचिकर प्रतीत होती है तथापि किसी महान काव्य की सृष्टि के लिए वैचित्र्यपूर्ण उदात्त ध्वनि-संगीत की आवश्यकता होती है।

'स्मरगरल' कवि-चित्त के केवल मात्र विवर्तन का ही नहीं अपितु कवि की चेतना के प्रसार का काव्य भी है।

सन् 1941 में, 'स्मरगरल' के प्रकाशन के पाँच वर्ष पश्चात् 'हेमंत-गोधूलि', काव्य प्रकाशित हुआ। मोहितलाल उस समय 48 वर्ष के थे। विभिन्न समय, विचित्र भावों से प्रेरित तथा रुचि के अनुसार लिखित इस काव्य में भाव-साम्य की

खोज करना व्यर्थ है। तंत्र-तत्त्व से प्रभावित जिस वीराचारी जीवन-दर्शन में इससे पूर्व के काव्य की विषय-वस्तु तथा भाषा-कौशल के मोहितलाल के काव्य को रवीन्द्रोत्तर बाङ्ला काव्य में स्वतन्त्र स्थान प्रदान किया था, इस काव्य में वह स्वतंत्रता अन्तर्हित हो, कवि की सृजनशक्ति के ह्रास की घोषणा करती है। व्यक्ति प्रशस्तिमूलक कविताओं में कवि-सत्ता से भी अधिक समालोचक का रूप स्पष्ट रूप से उभर कर आया है। अनूदित कविताओं में एक सृजनशील शिल्पी की क्षमता का परिचय मिलता है, लेकिन विभिन्न समय में विचित्र भावों से प्रेरित होने के कारण इन रचनाओं का विवेचन स्वतन्त्र रूप में भी किया जाना चाहिए। इस काव्य में संकलित निसर्ग रसाश्रयी तथा रोमांटिक सौन्दर्य-चेतना से युक्त कविताओं में ही मोहितलाल की स्वाभाविक स्वतन्त्र सृजन-धर्मिता अक्षुण्ण है।

'हेमंत-गोधूलि' नामक कविता रोमन्टिक उदासी तथा वेदना से ओत-प्रोत होने के कारण काव्य-सुषमा की दृष्टि से अनुपम है :

बुझने लगे जब आकाश में दिवस का आलोक
अस्त किनारे पर कौन तुम देवी, दीपावली जलातीं?
स्वप्न के भार से उनींदी आंखों की पलकें—
तिमिर-पट पर इतना रंग उंड़ेलता कौन?

(हेमन्त गोधूलि)

'यात्रा शेष', 'पंचाशोत्तम जन्मदिने', 'वाणीहारा', आदि कविताओं में जीवन की मंथर गति के साथ-साथ कवि-हृदय की वेदना मुखर हो उठी है। 'वनस्पति' तथा 'निर्वाण' कविताओं में प्रेम-पिपासाहीन जीवन का व्यर्थता-बोध है, 'अकाल-बसन्त' अथवा 'फूल ओ पाखि' कविताओं में यौवन के स्वप्नरंजित दिनों की स्मृति का गुंजार है। 'गंगातीरे' कविता में संस्कार-ग्रस्त वृद्ध हिन्दू की भाँति विद्रोही कवि 'अकूल शान्ति ओ विपुल विरति' की खोज में तत्पर दिखाई देते हैं। सृजन-धर्मी प्रेरणा के स्थान पर समकालीन साहित्य, देश तथा जाति के ह्रास की चिन्ता ने उनमें छुपी समालोचक-सत्ता को जाग्रत किया। अपनी कविता के माध्यम से उन्होंने जतीन्द्रनाथ सेनगुप्त के दुःखवादी कवि-सत्ता (दुःख के कवि) की समालोचना की। 'प्रश्न', 'अन्तिम', 'रविर प्रति', 'मधु उद्बोधन' आदि कविताओं में उन्होंने जाति के बहुमुखी चित्त के दैन्य एवं साहित्य की अभिव्यक्ति से सम्बद्ध दोष तथा दुर्बलता को ही अपनी समालोचना का लक्ष्य बनाया। 'फिरदौसी' कविता में पौरुषयुक्त मानव की महिमा का जयगान भी समालोचक की आदर्शवादी दृष्टि से प्रभावित है। कल्पना से रहित समालोचक कवि-रसमयी बाङ्ला की प्रकृति का संस्पर्श पाकर किस प्रकार पुनः कल्पना-प्रवण हो पुनरुज्जीवित हो उठता है, इसका प्रमाण है 'बाङ्लार फूल' नामक उनकी अद्वितीय कविता, जो चित्रात्मकता की दृष्टि से अप्रतिम है। इनके अतिरिक्त नैसर्गिक सौन्दर्य से सचेतन 'काल-वैशाखी',

'वधू-वासन्ती', 'उषा', 'प्रकाश' आदि कविताएँ रसास्वादन की दृष्टि से परम मधुर हैं।

मोहितलाल की काव्य माला में अन्तर्निहित यदि कोई मूल स्वर है तो वह निस्सन्देह एक अकृत्रिम अनुभूति-प्रवण कवि की आत्म-विस्मृत प्रेमोपलब्धि तथा सौन्दर्य-चेतना के विचित्र विलास से झंकृत है। यद्यपि कभी-कभी भोगवादी जीवन-दर्शन अथवा बौद्धिक जीवन-जिज्ञासा ने उनके काव्य को समकालीन काव्य-जगत् में असाधारण स्वतन्त्र-सत्ता प्रदान की परन्तु जीवन उपलब्धि की दृष्टि से उसे काव्य में कोई स्थायित्व नहीं मिल पाया। कवि हृदय के लाख विरोध तथा विक्षोभों के बावजूद जिसे काव्य-प्रेरणा से प्रेरित हो उन्होंने अपने अन्तिम काव्य-संग्रह 'हेमन्त-गोधूलि' की रचना की, निस्सन्देह वह मोहितलाल की स्वप्न-विलासी रोमान्टिक सौन्दर्य-चेतना ही है। कुछ उद्धरणों के माध्यम से इस वक्तव्य की सत्यता को प्रमाणित किया जा सकता है। जैसे 'बालूका-वासर' कविता में :

फिर भी यदि रात की माया, झाऊ की छाया, बालूचर
उदास करे मन को कभी, सूना-सा लगे बंद घर—
यहाँ इस नदी के मोड़ पर जहाँ प्लावन बहा ले जाएगी,
मेरी अंतिम शय्या पर—वहाँ रखोगी अपने चरण ?

(बालूका वासर)

अथवा

'शुभ क्षण' कविता में व्यक्ति काल की सीमा में आवद्ध जीवन के रस-रूप के उपभोग के लिए कवि के प्राणों की उत्कण्ठा :

इस रजनी में चाँदनी के धुँधलके में
देखो ना, आँखों से बरसती चितवन
देह का जो ठौर हो सबसे सुंदर,
वहीं पर सखा, देना अधीर चुम्बन
कौन जाने कल कहाँ होगी यह रूप-राशि ?
आज रात को छककर पीना, करना उस सुधा का समापन।(शुभ क्षण)

मोहितलाल की रोमान्टिक सौन्दर्य चेतना की अनुभूति कवि के जीवन में अंत तक बनी रही, इसका प्रमाण है—'हेमन्त-गोधूलि' में संकलित 'रूप-दर्पण' नामक कविता (पचास की उम्र में रचित) यद्यपि उपरोक्त सम्पूर्ण कविता ही उद्धरण के योग्य है तथापि पाठकों को उपहार-स्वरूप इस अत्यंत सुन्दर रोमान्टिक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं :

मेरे नयन की पुतलियों में निहारो अपने रूप की छाया
फेंक दो दर्पण,
स्थिर कटाक्ष से आँखें खोलो, सखि देखो।

केतकी पराग से पांडुर ललाट का हेमांकित-कुंकुम,
अधरों में भरी तुमने मदिरा सुरभि-चूम।
इधर निहारो, तुम्हारे भाल पर उषा-धूसर निशा—
वही एक तारा, हृदय में जलती उसकी उदार उजाले की तृष्णा।
मेरे स्वप्न की अब बीत चली शेष रात—
तुम्हारे अधरों पर इसलिए शोभित हास्य!
फेंक दो दर्पण!

तरुण मोहितलाल ने जिस स्वप्न-रंजित सौन्दर्य का सहारा लेकर यौवन के प्रारम्भिक काल में कवि के रूप में यात्रा शुरू की थी, मनोजगत् के द्वन्द्वों से उत्तीर्ण हो जाने के पश्चात् कवि जीवन से विदा ग्रहण करने के शेष मुहूर्त में भी वही सौन्दर्य-स्वप्न! जीवन के प्रति इतनी गहरी और तीव्र प्यास एवं अनुभूति प्रसूत सौन्दर्य दृष्टि का उज्ज्वल प्रकाश आधुनिक बाङ्ला काव्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

'हेमन्त-गोधूलि' की अनूदित कविताएँ मोहितलाल की कवि प्रतिभा का एक और आयाम है।

देश-विदेश के काव्य-साहित्य से भली-भाँति परिचित होने के कारण जब कभी इतर भाषा की कोई कविता उनकी काव्यानुभूति एवं रूपान्वेषी शिल्पी-हृदय को आकर्षक प्रतीत हुई, मोहितलाल ने बड़ी सहजता से उस कविता का अनुवाद किया। इस प्रकार की कविताओं में कवि का शिल्प-बोध इतने प्रखर रूप से अभिव्यक्त हुआ है मानो वे उनकी मौलिक रचनाएँ हों। इस स्तर की कविताओं में से 'प्रेतपुरी', 'नागार्जुन', एवं 'अन्तर्दाह' में देहवाद की सशक्त अभिव्यक्ति के कारण समकालीन नवीनता के अन्वेषी कवियों के द्वारा अत्यधिक प्रशंसित एवं सम्मानित हुईं। अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त ने अपने 'कल्लोल युग' तथा बुद्धदेव बसु द्वारा सम्पादित 'कविता' पत्रिका में मोहितलाल की इस प्रकार की कविताएँ जिनमें भाव एवं अभिव्यंजना की संस्कार-हीनता तथा भावावेग पूर्ण आधुनिकता की स्पष्ट अभिव्यक्ति दृष्टिगत हुई, उसकी इतनी अधिक आलोचना की है कि यहाँ उसका पुनः उल्लेख करना सर्वथा निष्प्रयोजन है। इनके अतिरिक्त भी मोहितलाल ने प्रिय कवि टेनीसन, रोजेटी, वाल्टर-डे-ला-मेयर का अनुसरण कर क्रमशः 'निशीथ राते', 'मन रेखो', निदालि', आदि कविताओं में मूल के सौन्दर्य को अक्षुण्ण रखते हुए भी उन कविताओं में अपूर्व काव्य-सुषमा की सृष्टि की। 'हेमंत-गोधूलि' की अनूदित रचनाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि शब्द प्रयोग में शिल्पी-सुलभ नैपुण्य, छंद-वैचित्र्य तथा तुकबन्दी में मोहितलाल की शक्ति वास्तव में ही स्वतः स्फूर्त थी। कुछ संक्षिप्त उद्धरणों के माध्यम से इस मन्तव्य की यथार्थता को प्रमाणित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए आस्टिन डॉब्सन से प्रभावित होकर रचित

'गद्य-पद्य' नामक कविता :

गाड़ी के पहिये से कीचड़ सने पथ पर जब जाए नहीं चला
अथवा जब आग तेज गति से उड़ाती जाती धूल का बगूला
जाड़े से ठिठुर जब घर के हो जाते खिड़की-दरवाज़े बंद,
ऐसे मे पसीने से तर हाँफते-खाँसते गद्य लिखो सिर्फ़।

(गद्य-पद्य)

अथवा सुईनबर्न की 'बीफ़ोर दी बिगनिंग ऑफ ईयर्स' के अनुवाद में मोहितलाल की तुकबन्दी की अद्भुत कुशलता द्रष्टव्य है :

हुआ जब आयोजन सृष्टि के आदि में,
मानव के मर्म की छाया-भर बाँधने,
महाकाल ले आया अश्रु का पारावार,
चिरसाथी होने को दिया धरना दु:ख ने।

'निदालि' कविता में शब्द-विन्यास-कौशल मोहितलाल की अद्भुत शिल्प तथा सृजनात्मक प्रतिभा के सामर्थ्य का परिचायक है :

अस्त-व्यस्त बालों को आँखों से हटाकर,
पैरों में बँधे नूपुर-द्वय उतार दो,
रेशमी चादर तानकर सलीके से
उस आसमानी को देह से लपेट लो। (निदालि)

मोहितलाल से पहले सत्येन्द्रनाथ दत्त ने भी कविताओं का कुशलतापूर्वक अनुवाद कर काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी। किन्तु मोहितलाल की अनूदित कविताओं का शिल्प-नैपुण्य सत्येन्द्रनाथ की तुलना में उत्तम कोटि का है। बॉदलेयर की 'हारमोनिक डी सॉयर' (सन्ध्यार सुर') कविता के प्रस्तुत अंश का दोनों कवियों द्वारा किये गये अनुवाद से ही यह स्पष्ट हो जाता है।

'सन्ध्यार सुर'—सत्येन्द्रनाथ

आ रही फिर वही संध्या स्पन्दित सचेतन
वृंत-वृंत पर धूपाधार सम, फूलों का दीर्घश्वास,
ध्वनि में, गंध में उठा चक्रवात, पवन का हाहाकार
सान्द्र फेनिल मूर्च्छा शिथिल नृत्य आवर्तन।

('सन्ध्यार सुर')

अब भी है सध्या, झूलती मंद वायु से कुंजलतिका
फूल लुटा रहे सुरभि, मानो वह अगरु-धूम
वातास भर रहा सुवास वसन में, गीतों की मूर्च्छना—
नृत्य के ताल-ताल में, भाव चरणों को जकड़ लेती शिथिल निद्रा

यहाँ केवल गीति प्रधान रसात्मकता ही नही, अपितु अभिव्यंजना की दृष्टि से भी मोहितलाल द्वारा अनूदित कविता निश्चित रूप से रसिक पाठकों के विचारानुसार उत्कृष्ट है।

इनके अलावा हाईनरिख हाईन की 'घोषणा', खलील जिब्रान की 'अंध कवि', राबर्ट ब्रुक की 'मृत्युरपरे', टेनिसन की 'निशीथ राते', ब्लेंको ह्वाइट की 'अंधकार' कविताएँ भी उनकी सार्थक अनूदित कविताओं के रूप में उल्लेखनीय हैं। भारतीय भाषाओं की अनूदित कविताओं से ऋग्वेद को 'सोमपायीर गाने' में वैदिक आर्य-जीवन के बलिष्ठ पौरुष को अभिव्यक्त किया गया है :

मैंने किया क्या सोमपान !
जो चाहता जितने अश्व और गाय
मुझ अकेले को ही मिल जाए सभी
—क्यों ऐसा अभिमान ?
मैंने किया क्या सोमपान ? (सोमपायीर गान)

विश्व काव्य-साहित्य के जिस रस के वितरण की साधना बाङ्ला भाषा के सशक्त कवि सत्येन्द्रनाथ ने प्रारम्भ की थी। उसी दुरूह साधना को मोहितलाल ने अपने कला-कौशल से तथा सार्थक अनुवादों के माध्यम से समुन्नत स्तर पर पहुँचा दिया।

कविता के बाह्य कलेवर की रचना में मधुसूदन की ही भाँति आडम्बर प्रिय होते हुए भी सॉनेट की रचना करते हुए मोहितलाल माइकेल मधुसूदन के ही समान कठोर संयम, मिताक्षरता में विश्वास रखते थे। पेत्रार्कीय सॉनेट उनका आदर्श होते हुए भी बाद के सॉनेटों में जो आंगिक-वैचित्र्य दिखाई दिया उससे भी मोहितलाल काफ़ी हद तक प्रभावित हुए थे। पेत्रार्कीय सॉनेट के अष्टक-षष्टक विभाजन को मानकर अनेक सॉनेटों की रचना करने पर भी सॉनेट के मूल रूपाकार को अक्षुण्ण रखते हुए स्तबक परम्परा में दीर्घ सॉनेटों की उन्होंने रचना की है, फिर चौदह अक्षरों की पंक्ति सीमा उल्लंघन कर पंक्ति को दीर्घ बनाते हुए सॉनेट के भाव गाम्भीर्य में भी उन्होंने वृद्धि की है। मोहितलाल केवल एक सशक्त सॉनेट रचयिता ही नहीं हैं बल्कि सॉनेट-तत्त्वज्ञ भी हैं—छंदों से सम्बन्धित उनकी आलोचना में वह प्रमाणित किया जा चुका है।

प्रथम काव्य-संग्रह 'देवेन्द्रमंगले' (1912) में 16 तथा अन्तिम काव्य-ग्रंथ 'छंद चतुर्दशी' (1951) में 54 सॉनेट संकलित हैं। 'देवेन्द्रमगले' में मोहितलाल की सॉनेट रचना की प्रतिभा का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। विभिन्न समय में रचित एवं 'छंद चतुर्दशी' में संकलित सॉनेटों में उनकी प्रतिभा स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। परन्तु इस काव्य-ग्रंथ में संकलित कई नये सॉनेटों में कवि की अवसन्न चेतना स्वतःस्फूर्त है। रूप-तन्मय कवि पहले की भाँति रूप-सौन्दर्य के

दर्शन से उत्तेजित नहीं हुए अपितु सौन्दर्य के दर्शन मात्र से मन में मृत्यु का भय समा जाता है (प्रणय भीरु) कल्पना की दीनता के लिए वेदना की अनुभूति, अथवा भावी समय के पृष्ठों पर अपनी जीवन्तता के प्रति संशय ने उनके स्वभावगत बलिष्ठ हृदय को भीरु बना दिया है (कल्पना, अमृतेर पुत्र)। किसी-किसी सॉनेट में जातीय जीवन के ह्रास से विचलित यंत्रणा तथा हाहाकार प्रकट हुआ है (जैसे दुर्गोत्सव)। इस आशाहीन हृदय की दुर्बलता तथा तीव्र नैराश्य के मध्य भी कवि की युक्तिसंगत मननशीलता पूरी तरह से लुप्त नहीं हुई इसका प्रमाण है—'द्रौपदी' तथा 'बंकिमचन्द्र' सॉनेट। मनुष्य की समाधान-रहित प्रेम-लीला रहस्य ने 'प्रेम ओ कर्मफल' सॉनेट में तात्त्विक रूप ग्रहण किया है। इसी विचारशीलता तथा तात्त्विकता ने कवि-जीवन के अन्तिम दिनों में मोहितलाल की तीव्र सौन्दर्य-पिपासा तथा रूपान्वेषी कवि-दृष्टि पर एक आवरण डाल दिया था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर भी काव्य-सृजन के प्रति उनकी विशेष प्रीति अन्त तक बनी रही —'छंद चतुर्दशी' के विशुद्ध 'सॉनेट' इसी तथ्य को प्रमाणित करते हैं।

कवि-दृष्टि, शिल्प-चेतना तथा प्रभाव

मोहितलाल की काव्य-दृष्टि, शिल्प-चेतना से उनके समकालीन और परवर्ती कवि किस हद तक उनसे प्रभावित हुए थे, इसकी आलोचना कर इस प्रसंग को समाप्त किया जा रहा है।

मोहितलाल की काव्य-रचना, साहित्य-भावना तथा विविध मननशील रचनाओं में एक ऐसी अविचलित दृष्टि का परिचय मिलता है जिसे 'कवि-दृष्टि' कहा जा सकता है। यह दृष्टि संस्कार-जन्य तथा प्रतिभा-मण्डित होते हुए भी उनके विशिष्ट जीवन-बोध से नियंत्रित है। इस जीवन-बोध के मूल में विस्तृत अध्ययन-गत ज्ञान का संचय है, प्रकृति तथा मनुष्य के साथ घनिष्ठ परिचय तथा जगत् और जीवन से सम्बन्धित दार्शनिक भाव-दृष्टि के साथ सौन्दर्य तन्मयता का सुन्दर सामंजस्य एवं समन्वय है। उनकी इस समन्वयवादी प्रतिभा ने ही उनके काव्य को आधुनिक साहित्य में स्वतंत्र तथा श्रद्धेय आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया था। एक ओर अत्यन्त तीव्र निसर्ग रहस्य-चेतना, तो दूसरी ओर जगत और जीवन से सम्बद्ध उपलब्धि के गहरे यथार्थ-बोध ने देश-काल की सीमा को स्वीकार करते हुए भी उनके कवि-कर्म को देश-काल से भी परे एक शाश्वत जीवन लोक में प्रतिष्ठित किया। इसी अन्तर्भेदी कवि-दृष्टि के प्रभाव से ही मोहितलाल मानव-जीवन तथा जगत् के रहस्यात्मक अन्तर्लोक में प्रवेश पाने में सक्षम हुए थे। विस्तृत मननशील आलोचना-समालोचनाओं में मोहितलाल ने स्वय भी इस सत्य को स्वीकार किया है कि यह अन्तःस्पर्शी दृष्टि ही सृजनात्मक साहित्य को परम मूल्यों से मूल्यवान बना देती है। अकृत्रिम सौन्दर्य-चेतना के साथ शिल्प-बोध का सामंजस्यपूर्ण समन्वय भी उनकी सर्जनात्मकता के परोत्कर्ष के मूल में था—इस विषय में भी जीवन-शिल्पी मोहितलाल सचेत थे। इसी कारण एक मूर्तिकार की भाँति दीर्घकाल व्यापी विचारशीलता, श्रम एवं अन्तर्निहित सौन्दर्य-सृष्टि की सहायता से उन्होंने अपने काव्य को जो अद्भुत सुन्दरता प्रदान की थी, वह काव्य-प्रेमी पाठक-समाज के लिए आज भी परम विस्मयकारी है।

मोहितलाल अलस कल्पना-विलास तथा स्थूल भाव-विलास विरोधी पौरुष-जन्य यथार्थवादी जीवन-बोध के कवि थे। जीवन-बोध के इस पौरुष-धर्म ने जहाँ एक ओर उनकी काव्य-भाषा को मध्याह्न सूर्य की प्रखर दीप्ति प्रदान की, वहीं दूसरी ओर उस भाषा में ऐन्द्रियता का भी संचार किया। मेघों के समान गुरु-गम्भीर ध्वनि से युक्त पौरुष-दीप्त काव्य-भाषा में उनके काव्य-साहित्य को आधुनिक काव्य-जगत् में स्वतन्त्र रूप में प्रतिष्ठित किया। अत्यन्त कोमल तथा लालित्यपूर्ण शब्दों के स्थान पर गुरु-गम्भीर शब्दों का प्रयोग कर उन्होंने काव्य-भाषा को आभिजात्यपूर्ण बनाया, प्रचलित काव्य-भाषा की शिथिलता दूर करने के लिए उन्होंने जान-बूझकर अपने काव्य में रूढ़ तथा कठिन शब्दों का प्रयोग किया है। उनके काव्य का केन्द्रीय भाव रोमान्टिक होते हुए भी भाषा सदा क्लासिकता से प्रभावित रही। वस्तुतः समकालीन कोमल-कान्त पदावली के स्थान पर काव्य में गद्य की स्पष्टता तथा तथ्यात्मकता का समावेश कर उन्होंने आधुनिक काव्याभिव्यक्ति का पथ प्रशस्त किया था। पाश्चात्य कवियों की भाँति मननशील भावना, संहति तथा सौन्दर्य-बोध के समन्वय के द्वारा बाङ्ला काव्य-साहित्य के तत्कालीन चरित्र को परिवर्तित करने में उन्होने विशिष्ट भूमिका निभाई। मधुर रस का संचार करनेवाली कविता के स्थान पर भयानक, रौद्र तथा वीभत्स रस का प्रयोग कर उन्होंने आधुनिक बाङ्ला-काव्य को वैचित्र्यपूर्ण बनाया। यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण यह समझने में उन्हें देर नहीं लगी थी कि रवीन्द्रनाथ की काव्य-भाषा के मोहजाल से कविगण अधिक समय तक मुग्ध नहीं रहेंगे। इसीलिए उन्होंने यत्नपूर्वक प्रयास कर काव्य-भाषा को गद्य-भाषा के अधिकाधिक निकट लाने में अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। काव्य के क्षेत्र में मोहितलाल के इस नये प्रयास से समकालीन सशक्त कवि जैसे बुद्धदेव बसु, सुधीन्द्रनाथ दत्त, विष्णु दे, जीवनानन्द दास आदि अनिवार्य रूप से प्रभावित हुए थे, उनके काव्यों से प्रासंगिक उदाहरण संयोजित कर उसे डॉ. दीप्ति त्रिपाठी ने अपने निबन्ध 'मोहितलाल ओ आधुनिकता' (प्रस्तुत लेखक द्वारा सम्पादित 'मोहितलाल मजुमदार, व्यक्तित्व साहित्य प्रतिभा' में प्रकाशित, पृ. 130-141) में प्रमाणित किया है।

मोहितलाल के अनुरागी कतिपय लेखकों ने उन्हें 'आधुनिक बाङ्ला काव्य मे बुद्धिवाद तथा देहवाद का प्रथम प्रवक्ता' कहा है।[1] इस मन्तव्य के औचित्य को स्वीकार करते हुए भी कहना होगा कि बुद्धिवाद तथा देहवाद के प्रथम प्रवक्ता होते हुए भी उनकी काव्योपलब्धि किसी मतवाद की संकुचित सीमा में आबद्ध नहीं रही। वे समग्र जीवन-बोध के कवि थे। आधुनिक तर्कपूर्ण तथा बुद्धिवादी जीवन की विचारशीलता के प्रभाव से मोहितलाल ने विद्वेषी शोपेनहावर के जीवन-दृष्टि

1 नारायण गंगोपाध्याय, 'कवि मोहितलाल', शनिवारेर चिठि, भाद्र 3369

की तीव्र समालोचना की है, महामानव बुद्ध की निवृत्ति-साधना को मानवता विरोधी कहते हुए उसकी निन्दा की है, रवीन्द्रनाथ के दैहिक वासना मुक्त स्वच्छन्दतावादी प्रेम का विरोध करते हुए अपने काव्य-साहित्य में नश्वर देह की कामना-वासना को सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है। अपने मन की गहराइयों में उन्होंने अनुभव किया कि देहधारी माया-मोहमयी नारी एक अंध-शक्ति के रूप में नित्यप्रति पुरुष के पौरुष पर प्रहार कर उसकी समस्त चेतना को विवश कर रही है। इस प्रबल आकर्षण ने उसकी समग्र सत्ता में एक अपरिसीम पीड़ा को जन्म दिया है। मोहितलाल के परिणत जीवन-बोध में इसी यंत्रणा-बिद्ध आत्मा का अशान्त-क्रन्दन है। कवि-आत्मा की यह हृदय-विदारक वेदना अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। कवि ने सामयिक रूप से उसका अतिक्रमण कर उसे समन्वित रूप में अभिव्यक्त किया है। देह तथा आत्मा, पुरुष तथा प्रकृति का परम रहस्यमय सामंजस्य ही मोहितलाल के समग्र जीवनोपलब्धि के मूल में है। आधुनिक तर्कपूर्ण बुद्धि के असीम प्रभाव के कारण उन्होंने उन्मुक्त भाव से देह के अनिवार्य दावे को स्वीकार किया है, लेकिन देहवाद को बिना किसी कुंठा के स्वीकार करते हुए भी देह स्थित आत्मा के ज्योतिर्मय प्रकाश की खोज में उनका मन और मानस व्याकुल हो उठा। देह, मन तथा आत्मा से प्रभावित मोहितलाल के इस समग्र जीवन-बोध एवं कवि-चेतना के उत्स को ढूँढ़ने के हेतु हमें बार-बार तन्त्र-तत्त्व के भोग-मोक्ष-मूलक उदार जीवन-दर्शन के जगत् में लौटना होगा।

साहित्य-समालोचक तथा प्रबन्धकार

मोहितलाल के साहित्यिक जीवन में एक लम्बी भूमिका के पश्चात् उनका समालोचक रूप उभर कर सामने आया जिसकी तुलना सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी समालोचक चार्ल्स ऑगस्टिन सेंट ब्यूव (Charles Augustin Saint Beauve) के साथ की जा सकती है। सेंट ब्यूव के समान ही मोहितलाल ने भी एक संवेदनशील पाठक का मन पाया था तथा इस विख्यात फ्रांसीसी समालोचक की भाँति ही विस्तृत अध्ययनगत ज्ञान की सहायता से पुरातन समालोचना रीति की उपेक्षा कर उन्होंने सूक्ष्म विश्लेषण के माध्यम से अपनी समालोचना को आधुनिक साहित्य की विचार-धारा की दृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित किया। ब्यूव के समान ही समालोचना को वास्तविकता का आधार प्रदान कर उसमें साहित्य-रस का संचार करना ही मोहितलाल का लक्ष्य था। आधुनिक विचारशील साहित्य-प्रेमी अवश्य ही इस बात को स्वीकार करेंगे कि मोहितलाल का यह प्रयास व्यर्थ नहीं गया।

जीवन तथा साहित्यादर्श के आधार पर मोहितलाल की सबसे अधिक समानता पाश्चात्य कवि एवं विशिष्ट समालोचक मैथ्यू आर्नल्ड के साथ है। दोनों ही साहित्यकारों के ख्याति-प्राप्त कवि-जीवन का अवसान उस समय हुआ जब उन्होंने अध्यापक-जीवन में प्रवेश करने के पश्चात् काव्य-चर्चा को त्याग कर साहित्य विचार-विश्लेषण तथा उसके मर्मोद्धार में अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर दिया था। वर्तमान साहित्य की असंतोषजनक स्थिति का सामना करते हुए आर्नल्ड की ही तरह मोहितलोल ने भी अतिक्रान्त युग में साहित्य के आदर्शों की खोज की थी, हृदय और मन से रोमांटिक होते हुए भी आर्नल्ड की भाँति ही साहित्यिक-प्रवणता की दृष्टि से वे क्लासिक-पंथी ही हैं। आर्नल्ड के समान मोहितलाल भी साहित्य में नैतिक गंभीरता (Moral Profindity) के पक्षधर थे। परन्तु वह नीति-बोध जीवन-विरोधी नहीं, जीवन-जिज्ञासा की ही स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति है। जीवन के यथार्थ से सम्बद्ध आर्नल्ड की गहरी उत्कंठा ने मोहितलाल के रोमांटिक मन को यथार्थवादी आलोचना जगत् की ओर प्रेरित किया। आर्नल्ड की भाँति ही

उनका विश्वास था कि गहरे सत्यबोध तथा सार्थक शब्द-चयन पर निर्भरशील आन्तरिक उपलब्धि, विषय-वस्तु के तात्पर्य तथा अभिव्यक्ति के गाम्भीर्य के आधार पर ही किसी महान काव्य का सृजन किया जा सकता है। भारत की प्राचीन आलंकारिक रीति के आदर्श से मोहितलाल आकर्षित नही हुए, क्योंकि वह रीति वास्तविक जीवन-बोध को काव्य में स्वीकार न करते हुए तात्त्विक विचार-विश्लेषण के द्वारा नियंत्रित है। आर्नल्ड की समालोचना में उन्हें समालोचना शास्त्र का आदर्श—जिसका मूल तथ्य साहित्य-जीवन-दीपिका था, दिखाई दिया। 'साहित्य-विचार' ग्रंथ के अंतर्गत 'काव्य ओ जीवन' एवं 'साहित्य ओ जीवन' प्रबन्धों में आर्नल्ड-निर्दिष्ट साहित्य-संज्ञा का विस्तृत विश्लेषण मोहितलाल ने किया है। साहित्यिक-विचारशीलता के क्षेत्र में मोहितलाल भी आर्नल्ड की तरह सेंट ब्यूव द्वारा प्रेरित यथार्थवादी समालोचना के समर्थक थे। मोहितलाल ने न केवल साहित्य में विषय-वस्तु के गुरुत्व को आर्नल्ड की भाँति स्वीकारा बल्कि साहित्य में निहित सौन्दर्य के विश्लेषण में भी दोनों में अद्‌भुत साम्य दृष्टिगत होता है। सौन्दर्य के स्वरूप का निर्णय करते हुए दोनों कवि समालोचक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सौन्दर्य की अभिव्यक्ति खंडित रूप में सम्भव नहीं, अखंडित रूप मे तथा सम्पूर्णता में ही सौन्दर्य को पूर्णरूपेण उद्‌भासित किया जा राकता है।

आर्नल्ड के समान मोहितलाल ने भी केवल विषय-वस्तु के तत्त्व को ही साहित्य का अनन्य उपादान नहीं माना, अपितु आर्नल्ड की भाँति उनका भी यह मत था कि महान साहित्य के केन्द्र में उदात्त काव्यात्मक भाव-गाम्भीर्य का होना नितान्त आवश्यक है, आर्नल्ड के समान मोहितलाल का भी यह दृढ़ विश्वास था कि लेखक की आन्तरिक उपलब्धि ही उसकी समस्त सृजनात्मक सफलता के मूल में निहित है। इस आन्तरिक उपलब्धि को ही मोहितलाल ने लेखक की दिव्य-दृष्टि कहा है। उनके मतानुसार इस दृष्टि के अभाव में, साहित्य में चिन्ता-रस विलास तथा कल्पना-विलास को प्रमुखता मिलेगी। ऐसी स्थिति में साहित्य के साथ वास्तविक जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाएगा। आर्नल्ड की सुप्रसिद्ध साहित्य-संज्ञा अथवा जीवन की समीक्षा (Criticism of life) में किंचित् सुधार करते हुए मोहितलाल ने साहित्य को श्रेष्ठ ज्ञानयोग कहा है। जीवन में निहित सत्य एवं सुंदर को अभिव्यक्ति ही महान साहित्य है—इसी अर्थ में साहित्य जीवन-दीपिका है। आर्नल्ड की भाँति ही मोहितलाल भी साहित्य में उच्चादर्शों के समर्थक थे, इसलिए उन्होंने स्वेच्छाचारी कल्पना को साहित्य में स्थान नही दिया,—रस के नाम पर रिपु, जीवन के स्थान पर उच्छृंखल जीवन-विलासिता के आपात रमणीय रूप को साहित्य में अवांछित उपद्रव मानते थे।

आर्नल्ड के एकनिष्ठ भक्त होते हुए भी साहित्य-समालोचना के क्षेत्र में, मोहितलाल ने उनके द्वारा प्रतिपादित सभी विचार ग्रहण नहीं किए। आर्नल्ड के

समान स्रष्टा जीवन-आलोक में सृष्टि पर विचार करने के पक्षपाती वे नहीं थे। उनका विश्वास था कि रचना में स्रष्टा का व्यक्तित्व पूर्णतः विलीन हो जाता है। अतः रचनाकार का जीवन नहीं अपितु रचना के मूल्यों की मीमासा ही आलोचक का लक्ष्य होना चाहिए। आर्नल्ड के ही समान मोहितलाल भी मानते हैं कि साहित्य के उपभोग एवं साहित्य के वास्तविक मूल्यों के निर्णय में समालोचक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है—समालोचक अपनी सूक्ष्म विचार शक्ति के माध्यम से न केवल उत्कृष्ट साहित्य तथा निकृष्ट साहित्य का निर्धारण करने में समर्थ है बल्कि पाठकों को भी इसके निर्वाचन में सहायता प्रदान कर सकता है। साहित्य पर विचार करते हुए मोहितलाल भी आर्नल्ड के समान बुद्धिवादी समालोचक न होकर रसवादी समालोचक हैं।

मोहितलाल ने साहित्य को उत्कृष्ट ज्ञानयोग क्यों कहा, इस पर विचार करना भी अब आवश्यक है। उनके विचारानुसार साहित्य ज्ञानयोग है क्योंकि वह सत्य एवं सुंदर की उपलब्धियों से निसृत जीवन के रहस्यों की खोज करती है। दैहिक-चेतना, हृदयगत-वेदना तथा मानस-क्रिया की पूर्ण परिणति तथा सामंजस्य के माध्यम से स्रष्टा को यह उपलब्धि होती है। इस कठिन प्रक्रिया से प्राप्त सत्य ही स्रष्टा की अन्तर्दृष्टि को सुंदर बना देती है। जब इस सत्य एवं सुदर के मिश्रण से उत्पन्न भाव, प्रेरणा का रूप ग्रहण कर सर्जक के हृदय पर अधिकार जमा लेते है तभी सर्वदेश-कालव्यापी रसिकजनों के उपभोग्य साहित्य की सृष्टि होती है। केवल सृजनशील कवि रूप में ही नहीं अपितु मोहितलाल समालोचक के रूप मे भी उसी सत्य-सुंदर के समन्वित रूप के पुजारी थे। काव्य-शिल्प के इस उच्चादर्श ने ही मोहितलाल की समालोचना को आधुनिक साहित्य में स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित और गौरवान्वित किया।

मोहितलाल के अनुसार, ज्ञान-वृत्ति तथा कल्पना समानार्थी हैं। भारतीय धारणा के अनुसार यह ज्ञान-वृत्ति ही प्रतिभा या प्रज्ञा कहलाती है। प्रतिभा अथवा प्रज्ञा के अधिकारी व्यक्ति मात्र वर्णन अथवा विवृति देकर ही संतुष्ट नहीं होते। विषयवस्तु को आत्मसात् कर, तन्मय होकर सृजन करने में ही वे सच्चा सुख पाते हैं। आत्मविस्मृति के बिना स्रष्टा के मन में तन्मयता के भाव उत्पन्न नहीं होते। यह आत्मविस्मृत तन्मयता ही आत्मोपलब्धि अथवा सत्य को प्राप्त करने का उत्तम है—जिसकी सहायता से सत्य एवं सुंदर के उपासक कीट्स तथा रवीन्द्रनाथ ने अनिर्वचनीय काव्य की सृष्टि की।

मोहितलाल ने कल्पना की भी दो प्रकार की प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है—गीतात्मक अथवा आत्मपरक—जिसे आपेक्षिक (Relative vision) तथा नाटकीय कल्पना कहा जा सकता है, जिसे पाश्चात्य समालोचकों ने निरपेक्ष अथवा पूर्णदृष्टि कहा है। अधिकांश कवियों की रचनाओं में जिस दृष्टि का परिचय मिलता है,

वह मुख्यत: आपेक्षिक है क्योंकि उनके कंठ में एक ही सुर बजता है, दूसरी ओर पूर्णदृष्टि के अधिकारी स्रष्टा के कंठ एक से अधिक हैं, तथा उस एकाधिक कंठ में विविध सुर बज उठते हैं। मोहितलाल के मतानुसार पाश्चात्य साहित्य में शेक्सपियर, एस्कीलस, सोफोक्लीज, होमर तथा कुछ हद तक चॉसर—इसी कोटि के साहित्यकार हैं।

तत्पश्चात् मोहितलाल ने रचनाकार के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के प्रश्न पर भी विचार व्यक्त किए हैं। उनके अनुसार, तन्मयता के फलस्वरूप रचना-कर्म में रचनाकार का व्यक्ति-परिचय यद्यपि विलीन हो जाता है तथापि उसकी रचनाधर्मिता का परिचय अवश्य ही स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। इसी को मोहितलाल ने रचना-कर्म का स्वातन्त्र्य कहा है—जो भाषा भाव एवं भंगिमा के विशिष्ट अभिव्यक्ति के द्वारा दीप्तिमान हो जाता है। अभिव्यक्ति की यह स्वतन्त्रता विभिन्न रचनाकारों की सृजनात्मक प्रकृति की भिन्नता को ही सूचित नहीं करती अपितु साहित्य के वैचित्र्य का विधान भी करती है। इसी कारण मोहितलाल ने साहित्य के मूल्यों पर विचार करते हुए सृजनात्मक-स्वातन्त्र्य पर इतना अधिक बल दिया है।

साहित्य की आलोचना करते हुए मोहितलाल प्राचीन संस्कृत अलंकार-शास्त्र पर पूरी तरह से निर्भर नहीं रहे क्योंकि कविमानस तथा काव्य-वस्तु संस्कृत काव्य शास्त्र की सीमा रेखा के अन्तर्गत नहीं समा पाया। पाश्चात्य-साहित्य-शास्त्रियों ने रचना-सृष्टि की सक्रिय प्रेरणा के रूप में कवि-कल्पना को जो महत्त्व प्रदान किया है प्राचीन अलंकार-शास्त्र में वह केवल 'कवि-व्यापार', 'कवि-कर्म' तथा 'कवि-कौशल' के रूप में वर्णित है। अलंकार-शास्त्र की रीति को काव्य की आत्मा तथा वक्रोक्ति को काव्य का प्राण कहा गया है। इस प्रसंग में गेटे की एक उक्ति को उद्धृत करते हुए मोहितलाल ने कहा है कि : आलंकारिक काव्य-जिज्ञासा में 'कैसे' को ही अधिक महत्त्व दिया गया है, 'क्या' को लगभग उपेक्षित ही रहने दिया गया है, इसलिए कवि-कर्म का सम्पूर्ण सौन्दर्य जिस पर आश्रित है, उसका समाधान या विश्लेषण कहीं नहीं मिलता।[1]

यद्यपि बाद में अलंकार-शास्त्र में ध्वनि को ही काव्य का श्रेष्ठ उपादान माना गया है। अन्ततः सभी ध्वनियाँ रस-ध्वनि में ही परिणत होती हैं, तथा रस ही वाक्य की आत्मा है, और वही काव्य है। मोहितलाल कहते हैं कि रस एवं रस की अभिव्यक्ति की मीमांसा को काव्य की आलोचना नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का विश्लेषण सौन्दर्य-विज्ञान के अन्तर्गत आता है। उनके मतानुसार 'रस' नामक

1 'साहित्य-विचार', काव्य ओ जीवन, पृ. 51

काव्य की 'आत्मा की खोज रस-तात्त्विकों का काम है। केवल रस को ही काव्य-विचार में प्रमुख मापदण्ड मान लेने से काव्य-विषय साधारण तत्त्व-विचार में परिणत होकर रह जाएगा। काव्य का प्रमुख उपादान 'कल्पना' संकुचित हो जाएगी। इसी कारण मोहितलाल काव्य का विश्लेषण करते हुए निर्विशेष रस-तत्त्व पर निर्भर न रहकर रचनागत मूल्यों पर विचार करते हुए स्रष्टा की प्रतिभा एवं कला-कौशल का विश्लेषण करते हैं। उनके मतानुसार संस्कृत-अलंकार-शास्त्रियों ने रस को अलौकिक तथा ब्रह्मानन्द-सहोदर के रूप में अनुभव किया है, वास्तव में वह मनोविनोद का एक साधन मात्र है। पाश्चात्य समालोचना की नींव जीवन के यथार्थ की विविधतापूर्ण अभिव्यक्ति के स्वरूप की खोज है। इसीलिए शायद मोहितलाल ने अलंकार-शास्त्रियों के निर्विशेष रसवादी साहित्य-आलोचना की अपेक्षा पाश्चात्य समालोचना के आदर्शों को अधिक महत्त्व प्रदान किया।

संस्कृत अलंकार-शास्त्रियों के तथाकथित 'रसवाद' को चित्र-चमत्कारी उपादान कहते हुए मोहितलाल चाहे उसकी कितनी भी आलोचना क्यों न करें, उनकी अपनी मूल्यवान साहित्य-समालोचना इस रसवाद से काफ़ी प्रभावित है। अपने समालोचना-साहित्य में अनेक स्थानों पर उन्होंने 'रस-सृष्टि', 'रस-दृष्टि', 'रस-साधना', 'रस-संवेदना', 'रस-सत्य', 'रस-चेतना', 'रस-कल्पना', 'रसावेश', आदि शब्दों का केवल प्रयोग ही नहीं किया है अपितु साहित्य की समालोचना करते हुए रस-तत्त्व की भूमिका को भी स्वीकारा है लेकिन रसवादी अलंकारविदों के प्रति उनका स्पष्ट अभियोग था कि "भारतीय सिद्धान्त काव्य का विश्लेषण करते हुए प्रकृति, कविता की विषय-वस्तु, कविमानस आदि की अवहेलना कर, अलौकिक रस-तत्त्व पर निर्भर रहा है, वह भावना विशेष को उपेक्षित कर, निर्विशेष को महत्त्व देती है, उसके लिए वस्तु मात्र ही शून्य है।"[1]

पाश्चात्य देशों में युक्तिवादी भावना ने किस प्रकार रोमान्टिक साहित्य को क्रमशः यथार्थवादी-चेतना (Sentiment of Reality) की ओर आकर्षित किया था, सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी समालोचक सेंट ब्यूव ने अपनी समालोचना मे इसका उल्लेख किया है। इस अभिनव सृजन में भाव-दृष्टि के साथ संयमित रूप-कर्म भी स्रष्टा के मनोयोग का विषय बन जाता है। भावों की अभिव्यक्ति किस हद तक सार्थक है, साहित्य की मीमांसा करते हुए यह विषय भी विचारणीय बन जाता है। साथ ही, काव्य में जीवन का गहनतम सत्य कवि की चेतना में कहाँ तक उद्भासित है···इसकी जाँच और परख कर लेना भी अनिवार्य है। कवि द्वारा उपलब्ध सत्य तथा सुन्दर उसकी रचनाओं में जितना प्रतिबिम्बित है, कवि-प्रतिभा भी उसी मात्रा में सार्थक रूप से प्रतिबिम्बित है, कवि-प्रतिभा उसी के अनुरूप सार्थकता

1 साहित्य विचार, पृ. 30

प्राप्त करती है। पाश्चात्य साहित्य के इस आदर्श के कारण पाश्चात्य समालोचना रीति में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया था, मोहितलाल जैसे विद्वान उससे अनभिज्ञ नहीं थे। इसी कारणवश कट्टर-पंथी जीवन-चेतनाविहीन स्वतन्त्र-काव्य से मोह-मुक्त होकर उन्होंने ऐसे साहित्य की समालोचना की जो यथार्थ जीवन की शिल्प रचना से ओत-प्रोत था। मोहितलाल की भाषा में इस सृष्टि-कर्म में स्रष्टा के ज्ञानयोग का प्रतिफलन किस सीमा तक हो पाया है, इसी का विश्लेषण करना अभिनव काव्य-समालोचना पद्धति का मापदण्ड है।

मोहितलाल का विश्वास था कि अलंकार-शास्त्रियों के द्वारा उपलब्ध रस के मूल में विशेष का स्पर्श न होने के कारण वह रस-वस्तु जीवन-ग्राही नही बन पाता है। जीवन के केवल सुन्दर पक्ष ही नहीं बल्कि असुन्दर पक्ष की अभिज्ञता भी आन्तरिक सहानुभूति का स्पर्श पाकर जब काव्य में सुन्दर रूप प्राप्त कर लेती है तभी काव्य रसोत्तीर्ण होता है।[1] यहाँ ध्यान देने योग्य है कि जीवनवादी समालोचक मोहितलाल रस की अनिर्वचनीयता को स्वीकार करते हुए भाव-प्रेरित रस को वास्तविक जीवन के केन्द्र में स्थापित करने को उत्सुक हैं। परन्तु काव्य में रस को मूर्त रूप प्रदान करने में मोहितलाल ने भाषा के रंग तथा छंदों की सुषमा की अपरिहार्यता की बात की है, वह वर्तमान युग के काव्य-सृजन में अपरिहार्य नहीं मानी जा सकती।

वस्तुतः आर्नल्ड पंथी साहित्य-समालोचक मोहितलाल जीवन से रहित विशुद्ध कलावादी अथवा रसवादी साहित्य को साहित्य मानने के पक्षधर नहीं हैं। उनके अनुसार विशुद्ध कलावाद जीवन के यथार्थ को अस्वीकार कर स्रष्टा के मन में शिल्प निर्मित एक कला-प्रासाद (Palace of Art) की रचना करता है, जिसे प्रकारान्तर में स्वप्न-सुख का उपभोग कहा जा सकता है। परन्तु मोहितलाल ने गेटे तथा रवीन्द्रनाथ के काव्य में पाया कि कलावाद यदि आध्यात्मिक जिज्ञासा के साथ जुड़ जाए तो वह जीवन को सभी विरोधों एवं द्वन्द्वों से मुक्त कर एक प्रकार से जीव-मुक्ति का उपाय बता सकता है। लेकिन इन दोनों विशुद्ध कलावादियों के काव्यादर्श में भी उन्हें भिन्नता दिखाई दी। उनके अनुसार गेटे का कलावाद वास्तव में ज्ञान-वाद है क्योंकि उन्होंने विशेष में निर्विशेष को देखा। दूसरी ओर रवीन्द्रनाथ के जगत् तथा जीवन का उत्स उनकी मानस-उद्भूत चेतना है—जिसमें गेटे के शिल्प की वस्तुवादिता नहीं है। फिर भी दोनों महाकवियों में मोहितलाल ने एक तथ्य पर समानता देखी। जीवन-संघर्ष में रत शिल्पी के हृदय में जिस परम अनुभवगम्य ज्ञान का उदय होता है तथा जो अनुभव मानव-मात्र को आन्तरिक अनुभूति के बंधन द्वारा आत्मीय बना देती है—इन दोनों महान्

1 'साहित्य-विचार', साहित्य सेवा, पृ. 198

प्रतिभाशाली कवियों की कला-कल्पना में कहीं भी उसका सीधा परिचय नहीं मिलता।[1]

रचनाकार के व्यक्तित्व पर विचार करते हुए भी समालोचक मोहितलाल ने अपनी सूक्ष्म विश्लेषणात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। उनके विचारानुसार वास्तविक स्रष्टा मानव-मात्र का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी विस्तृत तथा व्यापक अनुभूति के सहारे वह सर्व-दर्शी बन जाता है—महाकवि शेक्सपियर की तरह। मोहितलाल ने स्रष्टा के इस शिल्पी व्यक्तित्व को समृद्ध तथा यौगिक व्यक्तित्व कहा है। इस स्तर का प्रसारण-शील व्यक्तित्व मूलत: व्यक्ति-स्वातन्त्र्य से भिन्न है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तो आत्म-भाव स्पर्धी होता है। इस प्रकार के स्वातन्त्र्य-गर्व से युक्त स्रष्टा व्यक्तिगत रुचि के अनुसार जगत् और जीवन का जैसा रूप अंकित करता है, वह सृष्टि के सत्य से अनुप्राणित न होने के कारण मानव-मात्र का प्रतिनिधित्व नही कर पाता। मोहितलाल का दृढ़ विश्वास था कि इस प्रकार की व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवादी, कल्पना-विलासी आत्म-भाव से प्रेरित संकीर्ण शिल्प-चेतना वास्तविक सृजन के प्रतिकूल है।

विचारशील मोहितलाल ने विशुद्ध कलावाद की ही भाँति रचनाकार की स्वतन्त्र अनुभूति तथा कल्पना-रहित वस्तु-परक साहित्य को भी शिल्प-सृष्टि की मर्यादा प्रदान नहीं की है। वस्तु-परक शिल्पी जीवन को कुछ 'वक्र, भग्न, असम्पूर्ण, अर्थहीन रेखाओं के समावेश के रूप में देखता है, उनकी अनुभूति मुहूर्त की अनुभूति है, यद्यपि उस अनुभूति की परम्परा हो सकती है किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं है। इस प्रकार के सृजन में संगति की सुषमा दृष्टिगत नहीं होती। फलस्वरूप, शिल्प-सृष्टि का जो अन्यतम लक्ष्य है—रूप अथवा सौन्दर्य-सृष्टि—वह इन सभी रचनाओं में प्राय: दिखाई ही नहीं देता। इसी कारण इस स्तर की रचनाओं को शिल्प-कला के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। इन सभी रचनाओं में आत्म-संस्कार का निषेध सम्भव नहीं होता इसलिए वास्तविक चित्र में आत्म-भाव के ही विकृत तथा विकलांग रूप के दर्शन होते हैं।

मोहितलाल के अनुसार वास्तविक सृजन का अपरिहार्य उपादान न तो आदर्श है, न ही यथार्थ बल्कि रोमांस है। रोमांस से मोहितलाल का अभिप्राय साधारण प्रचलित अतिवादी कल्पना नहीं है, उनके मतानुसार रोमांस उस प्रकार की सृजन-धर्मी कल्पना है—जो खंडों में विभक्त तथा असंलग्न को अपनी परिधि में लेकर यथार्थ को सौन्दर्य से परिपूर्ण कर रूपमय बना देता है। जीवन से प्रेरित साहित्य की रूप-समग्रता जीवन के गम्भीर नीति-नियमों के अधीन है—जिसके प्रभाव से सृष्टि के गूढ़ रहस्य मानव की कहानियों में दृष्टिगोचर होते हैं।

---

1 'साहित्य विचार' पृ. 118

वास्तविक कवि-कल्पना सभी प्रकार के संस्कारों से मुक्त होने के कारण जीवन की सभी सीमाओं में अबाध रूप से विचरण करने में सक्षम है। यह बंधनहीन कवि-दृष्टि ही पूर्ण-दृष्टि है तथा मोहितलाल का विश्वास था कि यही पूर्ण-दृष्टि सम्भव-असम्भव की सीमा का अतिक्रमण कर सृष्टि अथवा सृजन को परम मूल्यों से सार्थक बना देती है।

आधुनिक पाश्चात्य साहित्य-तात्त्विकों की भाँति मोहितलाल का भी मत था कि साहित्य-सृजन का मूल तत्त्व अथवा रहस्य है, साहित्य की शैली। संस्कृत अलंकार-शास्त्रियों की रीति से शैली की अभिव्यंजना कहीं अधिक व्यापक है, क्योंकि रीति तो केवल भाषा के दोष-गुण का वाचक है, और शैली से तात्पर्य है व्यक्ति-विशेष की विशिष्ट वाक्-भंगिमा, भाव तथा शब्दार्थ में सामंजस्य एव आत्म-प्रधान रचना की सुस्पष्टता तथा प्रांजलता। अनुभूति की गहनता तथा व्यापकता व्यक्ति-सीमा का अतिक्रमण कर जब वाक्य-विशेष में निर्विशेष को अभिव्यंजित करे तभी शैली की सृष्टि होती है। भाषा तो शैली का वाहन है। रचनाकार के अनन्य-साधारण व्यक्तित्व के स्पर्श से जब भाषा अपनी स्वतन्त्र महिमा से प्रतिष्ठित होती है, उसी को शैली कहते हैं। मोहितलाल कहते हैं, व्यक्ति के साथ वस्तु के साक्षात्कार-जनित प्रेरणा से ही शैली की उत्पत्ति होती है, केवल भाषागत सौन्दर्य को शैली नहीं कहा जा सकता। लेखक की भाव-दृष्टि जब किसी विशिष्ट वाक्-भंगिमा के साथ एकाकार हो किसी तृतीय सत्ता में प्रतिष्ठित हो जाए, तो उसी को शैली कहते हैं—अंग्रेज साहित्य-तात्त्विकों ने जिसे 'शैली ही व्यक्ति है'—कहा है। शैली व्यक्तित्व पर निर्भर होने के कारण अनुकरणीय होती है।

शैली पर विचार करते हुए मोहितलाल ने इस विषय पर भी प्रकाश डाला है कि श्रेष्ठ शैली की पहचान क्या है। वाक् पद्धति की सभी भंगिमाओं को नजर अंदाज कर जब रचनाकार अपनी रचना में पूरी तरह से आत्मलीन हो जो जाता है तभी सर्वोत्तम शैली की सृष्टि होती है—शैली का ऐसा विश्लेषण निःसन्देह गम्भीर विचार-विमर्श का परिणाम है। मोहितलाल का यह दृढ़ विश्वास था कि जिस परिणाम में शैली मानव-हृदय तथा मानव-जगत् को गहनतम रूप में तथा समग्रता के साथ प्रतिबिम्बित करता है, उसी के अनुरूप वह उत्कृष्ट बनता है। मोहितलाल के द्वारा उपलब्ध शैली ने यहाँ पर साहित्य के सृजन-तत्त्व के अन्तरतम उत्स को स्पर्श किया है। मोहितलाल के अनुसार, शैली की समस्या साहित्य की समस्या से कम जटिल नहीं है। अपरोक्ष अनुभूति को परोक्ष भाषा के सहारे मूर्त रूप प्रदान करना ही यह समस्या है। यद्यपि शैली विषय-वस्तु पर निर्भर करती है तथापि भाव को मूर्त रूप प्रदान करना ही उसकी परिणति है, अर्थात् शैली में विषय वस्तु की अपेक्षा भावों की अभिव्यंजना ही अधिक होती है। मोहितलाल कहते हैं कि भाषा की उसी रीति को शैली कहेंगे जिसमें रचना के भाव एवं देह के

बीच आंशिक या समग्र, किसी भी प्रकार का कोई असामंजस्य नहीं है। शैली की एक और विशिष्टता है वाक्य की ध्वन्यात्मकता। मोहितलाल मानते हैं कि शैली रीति के समान भाषा का बाह्य-सौष्ठव मात्र नही है, वाक्-चातुरी अथवा वाक्-विदग्धता भी नहीं, शैली तो लेखक की मौलिकता से दीप्तिमान होती है, भावों की अभिव्यक्ति उसे महत्त्व तथा गम्भीरता प्रदान करती है। मोहितलाल के अनुसार शैली की यह वैचित्र्य-पूर्ण भाव-विदग्धतापूर्ण अभिव्यक्ति केवल विशुद्ध भाषा में ही सम्भव है—बोलचाल की आम भाषा में इसे वहन करने की क्षमता नहीं है। यद्यपि उस भाषा-रीति में निष्प्राण तकनीकी कारीगरी तथा कसरत अवश्य विद्यमान है। आधुनिक प्रचलित आम भाषा के लेखक इस विचार से सहमत होंगे या नहीं, इसमें यथेष्ट संदेह है। परन्तु मोहितलाल ने उत्कृष्ट शैली के लक्षण के रूप में लेखन के संयम, बाहुल्य-वर्जन तथा भाषा की गूढ़ मिताक्षरता पर जो बल दिया है, उसकी युक्तियुक्तता को शायद ही कोई अस्वीकार करे। मोहितलाल ने शैली को एक प्रकार की मनन शक्ति माना है, इसमें भी कोई दो राय नहीं हो सकती। शैली के आध्यात्मिक गुण के रूप में एक और लक्षण का उल्लेख मोहितलाल ने किया है — लेखक की दिव्यानुभूति के प्रभाव से ही रचना में उत्तम गुण का समावेश होता है। इस प्रकार की शैली में शब्द जादू के मन्त्रों के समान ही सशक्त होते है। (जैसे अंग्रेजी कवि ब्लेक की रचनाओं में) उत्तम शैली की व्याख्या करते हुए मोहितलाल भी फ्लावेयर के साथ एकमत है, "उसी एक भाव के रूप को अस्वीकृत करना ही साहित्य-स्रष्टा का अभीष्ट है। पहले उस भाव को लेखक पूर्णतया आत्मगोचर कर, फिर उनका अभिप्राय होगा, 'मैं जो देखता हूँ, तुम भी ठीक वही देखो, यही मै चाहता हूँ'। इस प्रकार की सफलता ही शैली का सर्वस्व है।"[1]

अत में मोहितलाल ने उसी को 'महान शिल्प कहा है जिसमें मानव-हृदय की व्याप्ति तथा गहनता प्रतिबिम्बित है, जटिल विषय-विस्तार सुसमृद्ध रूपाकार में अभिव्यक्त है, जो वर्ण-वैचित्र्य से युक्त तथा अतीन्द्रिय सौरभ से परिपूर्ण है तथा जिसमें विश्व-मानव के प्राणों का स्पदन सजीव रूप से स्पन्दित है।

मोहितलाल द्वारा शैली की व्याख्या साहित्य-सृष्टि के अन्तरग उपादान के रूप में निःसन्देह अपनी मनस्विता के लिए अनुपम है। मिडलटन मरे तथा थियोडोर वाट्स डॉनटन के शैली-तत्त्व के द्वारा वे शैली की समीक्षा में विशेष रूप से प्रेरित हुए थे।

साहित्य की समीक्षा के लिए जिस शक्ति का होना अनिवार्य है, उस सम्बन्ध में भी मोहितलाल ने अपना स्पष्ट अभिमत व्यक्त किया है। उनका विचार है कि साहित्य-समीक्षक के लिए कवि-दृष्टि का होना नितान्त आवश्यक है। कवि-दृष्टि-

---

1 साहित्य विचार, पृ. 107-8

हीन समालोचक के लिए सृजन के मर्म तक पहुँच पाना असम्भव है, यह कवि-दृष्टि सहजात होती है। ज्ञान, पाण्डित्य, खोखले दर्शन अथवा मेधा के द्वारा यह दृष्टि प्राप्त नहीं की जा सकती। साहित्य-समीक्षक की इसी दृष्टि को ही मोहितलाल ने रसात्मक-दृष्टि कहा है। समालोचना योग्य काव्य अथवा साहित्य भी श्रेणियों में विभाजित है। वास्तविक जगत् में जो दृष्टिगोचर नहीं। उसको अपने गहनतम चेतना में अनुभव करके तथा उसे कविता का रूप देकर कवि जन मन-ही-मन आश्वस्त हो जाता है, ऐसे काव्य को आश्रय-अन्वेषी काव्य कहा जा सकता है। दूसरे प्रकार के काव्य में स्रष्टा न केवल जीवन का सामना करता है अपितु उसके अन्तस्तल को भेदने का दुःसाहस भी करता है; इस श्रेणी के काव्य को जीवन-व्याख्यामूलक काव्य कहा जा सकता है। एक अन्य श्रेणी के अन्तर्गत जिस आधुनिक गहनतर कवि-दृष्टि का उल्लेख मोहितलाल ने किया है, उसमें न तो पूर्वोक्त कवि-दृष्टि की सान्त्वना ही है न ही समाधान। जिस अदम्य प्रवृत्ति के प्रभाव से मनुष्य की चेतन बुद्धि पराजित हो जाती है, नियति द्वारा लांछित होती है, जब किसी सशक्त दर्शन से स्रष्टा की अन्तरचेतना स्तम्भित हो विमूढ़ हो जाती है, स्रष्टा के सृजनशील मन में तभी इस गहन कवि-दृष्टि का आविर्भाव होता है जिसे सूक्ष्मदर्शी मोहितलाल ने आधुनिक जीवन-शिल्पी सॉमरसेट मॉम की रचना में देखा था। समालोचक मोहितलाल की अन्तर्दृष्टि यहाँ प्रवृत्ति-प्रताड़ित, नियति-लांछित मानव-जीवन के रहस्यों की खोज करती है।

मोहितलाल के मतानुसार साहित्य-सृजन का एक और उपादान हास्य रस है जो सृजनात्मकता को उपभोग्य रसात्मकता प्रदान कर सकने में समर्थ है। साहित्य-मर्मज्ञ मोहितलाल ने हास्य-रस को, प्रचलित धारणा के अनुसार, क्षुद्र रस-सृष्टि के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा है, हास्य रस लेखक का एक ऐसा मानस-धर्म है—जिसकी उत्पत्ति जगत् तथा जीवन के प्रति निर्लिप्त किन्तु सहृदय मनोभाव के द्वारा होती है। उनका विचार था कि हास्य-रस की सृष्टि के लिए वास्तविक सृजनात्मक प्रतिभा का होना अनिवार्य है, जिस प्रतिभा के बल पर सर्जक सभी विसंगतियों तथा दुर्भाग्यपूर्ण मनुष्यों की विवशता को अविचलित मन से, बिना किसी आक्षेप के लघु-हास्य का रूप दे दे। *'साहित्य-वितान'* ग्रन्थ (पृ. 255 से पृ. 258) में कुशल विश्लेषण के द्वारा मोहितलाल ने दर्शाया है कि देशी-विदेशी साहित्य में जो भी लेखक रस-प्रबुद्ध एवं प्रतिभावान के तौर पर स्वीकृत है, उन सभी ने रसोत्तीर्ण साहित्य की सृष्टि में इसी हास्य रस का सहारा लिया है। मोहितलाल की धारणा है कि, जीवनधर्मी साहित्य के अपरिहार्य उपादान के रूप में 'ह्यूमर' शब्द को जिस व्यापक तथा गहरी अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त किया जाता है, हास्य रस उसका समानार्थी प्रतिशब्द नहीं है। 'ह्यूमर' शब्द के समानार्थी शब्द का बाङ्ला भाषा में उद्भव होना चाहिए।

साहित्य की समीक्षा करते हुए एक ओर जहाँ मोहितलाल ने स्रष्टा के गतानुगतिकता-विहीन आन्तरिक भावों की प्रेरणा के उत्स की खोज की है, वहीं दूसरी ओर भाषागत समीक्षा को भी अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया है उनका विचार है कि सर्जनात्मकता के उत्कर्ष का प्रत्यक्ष परिचय तो भाषा के सुस्पष्ट, सुडौल तथा निर्मल रूप में ही निहित है। उनका कथन है कि यदि भाषा को शिल्प क अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया जाए तो भाषा को भी शिल्पगत गुणों से परिपूर्ण होना होगा। यदि भाषा दूषित, दुर्बल, सौन्दर्य-सुषमा से रहित हो तो, उस स्थिति में, उसकी सहायता से जिस शिल्प की सृष्टि होगी, वह दुर्बल होगी तथा पाठक के मन को आकर्षित करने में असमर्थ होगी—यही स्वाभाविक है। मोहितलाल ने साहित्य की इस सुंदर, एवं समन्वित अभिव्यंजना को 'काया-कान्तिवाद' कहा है। [बहुत अधिक प्रचलित न होते हुए भी मोहितलाल प्रदत्त यह नामकरण विवेचन-योग्य है।]

साहित्य-रचना में देशकाल का प्रभाव अनिवार्य है या नहीं—मोहितलाल ने साहित्यिक तत्त्वों की आलोचना करते हुए इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास किया है। उनके मतानुसार साहित्य स्वयंभू अथवा ज़मीन फोड़कर निकली हुई कोई वस्तु नहीं है—देशकाल की सुनिर्दिष्ट परिधि में कार्य-कारण के निर्देशों को मानकर ही साहित्य की सृष्टि सम्भव है। रचनाकार अपनी प्रतिभा के तारतम्य के अनुसार ही रचना के देश-काल की परिधि में सीमित रहता है अथवा उस सीमा का अतिक्रमण भी कर सकता है। किसी रचना में देशकाल किस सीमा तक चित्रित है, साहित्य-समीक्षक केवल उसी का अन्वेषण नहीं करता अपितु देशकाल से प्रभावित साहित्य में रस-सौन्दर्य की स्थिति क्या है—इसी को वह अधिक महत्त्व प्रदान करता है। मोहितलाल की धारणा है कि जो सत्य देशकाल के वर्तमान रूप में उपलब्ध है, वही प्रत्यक्ष अनुभूति ही प्रतिभाशाली सर्जक की प्रतिभा का स्पर्श पाकर शाश्वत तथा सार्वजनीन हो जाता है।

मैथ्यू आर्नल्ड के आदर्श एवं सिद्धान्तों को मानते हुए यद्यपि साहित्य के विषय-वस्तु के महत्त्व को मोहितलाल ने निर्विवाद रूप से स्वीकार किया तथापि आस्कर वाइल्ड के समान 'विशुद्ध शिल्पवादियों' की कर्म निर्भरता को भी मोहितलाल ने कम महत्ता प्रदान नहीं की। परन्तु वाइल्ड की भाँति साहित्य सृजन में 'रूप ही सब कुछ है' न कहकर वे कहते थे कि साहित्य 'भावों के रूप की रचना है।' मोहितलाल का फार्म के प्रति लगाव वाइल्ड के मत की प्रतिध्वनि मात्र नहीं है। उनके इस संशोधित अभिमत की समानता वाल्टर पेटर के साहित्य-विचारों के साथ देखी जा सकती है। शायद मोहितलाल आर्नल्ड के जीवनवादी साहित्य के साथ विशुद्ध शिल्प-वादियों के रूपाश्रयी साहित्य का समन्वय करना चाहते थे।

पाश्चात्य साहित्य-तात्त्विकों में शायद दार्शनिक-साहित्य-समीक्षक बेनेदेत्तो

क्रोचे के साहित्य-विचारों से मोहितलाल सर्वाधिक प्रभावित हुए थे। क्रोचे ने साहित्य-शास्त्र के नीति-नियमों के भी परे अन्तःस्थित जिस सृजनात्मक चेतना के उपलब्धि की बात की है, मोहितलाल ने उसे 'अन्तर की रूप रचना' कहा है। सर्जक की व्यक्तिगत उपलब्धि पर सृजन का रूप-वैचित्र्य निर्भर करता है, ऐसा मानते हुए मोहितलाल ने भी क्रोचे के समान कवि के व्यक्तित्व पर अधिक बल दिया था। प्रत्येक सृजनशील कवि का अनुभूति-केन्द्र स्वतन्त्र होने के कारण मोहितलाल ने काव्य की व्याख्या करते हुए क्रोचे की भाँति 'इम्प्रेशनिस्टिक' समालोचना का अनुसरण किया था। परन्तु मोहितलाल ने कवि की जिस स्वतन्त्र अनुभूति का उल्लेख किया है, उसका उत्स व्यक्ति-केन्द्रित होते हुए भी उसका प्रभाव सर्वव्यापी है। क्रोचे की दार्शनिकता से प्रभावित साहित्यिक सिद्धान्तों पर आधारित साहित्य-समीक्षा पद्धति से मोहितलाल.अत्यधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं।

आधुनिक यथार्थवादियों की भाँति मोहितलाल ने भी साहित्य के क्षेत्र में दैहिक कामना-वासना के तीव्र प्रभाव को स्वीकार किया है। लेकिन उन्होंने स्थूल भोगवाद को ही साहित्य-विचार में प्रमुख नहीं माना। देह और आत्मा के द्वन्द्व से विक्षुब्ध मन के भाव ही उनकी उपलब्धि है। इस निरंतर संघर्ष के बीच ही दैहिक चेतना से आत्मा के जगत् में जाने का प्रयास ही जीवन का लक्ष्य है। मोहितलाल की उपलब्धि के अनुसार यह द्वन्द्वोत्तीर्ण जीवन ही अखंड है, जीवन-समग्र है। इस समग्र जीवन बोध की अभिव्यक्ति से ही साहित्य रस समन्वित हो जाता है। वस्तुतः समग्र जीवन बोध की इस चेतना ने ही मोहितलाल की साहित्य-समालोचना को व्यापकता तथा गहनता प्रदान की थी। देहवाद से प्रभावित होते हुए भी देहोत्तीर्ण इस अखंड जीवन-बोध के मूल में पाश्चात्य साहित्य का थोड़ा प्रभाव अवश्य रहा होगा। परन्तु इसमें भी संदेह नही है कि इस अखण्ड जीवन-तत्त्व के मूल में यदि कोई चेतना विशेष रूप से सक्रिय रही तो वह तंत्र-तत्त्व के भोग-मोक्षवाद से प्रभावित है। इसी तंत्रोक्त जीवन-तत्त्व में उनके काव्य को आधुनिक काव्य-जगत् में जिस प्रकार स्वतन्त्र स्थान प्रदान किया, उसी प्रकार समालोचना-साहित्य को भी स्वातन्त्र्य प्रदान किया।

मोहितलाल के साहित्य-तत्त्व-विचार पर पाश्चात्य, प्राच्य तथा एक और प्रभाव का उल्लेख कर इस प्रसंग को यहीं समाप्त किया जा सकता है। विशुद्ध साहित्य-तात्त्विक के रूप में अपना स्थान बना लेने के कुछ समय पश्चात् यह दृष्टिगत हुआ कि मोहितलाल ने साहित्य-सृजन की प्रेरणा के रूप में जाति तथा देशकाल के प्रभाव पर विशेष बल दिया है। इस प्रसंग में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध फ्रांसीसी समालोचक हिपोलाइट तेइन की जाति, सामाजिक परिवेश एव मुहूर्त अथवा काल आदि तत्त्वों पर ध्यान जाता है। यद्यपि साहित्य-सृजन में मोहितलाल ने सर्जक की सृजनशीलता के स्वतन्त्र मूल्यों को कभी अस्वीकार नहीं किया, लेकिन

धीरे-धीरे उनकी साहित्य-समालोचना में जातीय संस्कार, देश तथा काल के प्रभाव को अधिक प्रमुखता प्राप्त होने लगी थी। साहित्य-चिन्तन के इस विवर्तन में पाश्चात्य ऐतिहासिक समालोचना का प्रभाव अवश्य ही था और साथ-ही, सम्भवत: तेइन के समालोचना सूत्र के प्रभाव ने भी मोहितलाल की समालोचना-सत्ता में नवीन चिन्तन प्रणाली को जाग्रत किया। किन्तु मोहितलाल शायद इन सबसे भी अधिक बंकिमचन्द्र, पाँचकड़ी बन्द्योपाध्याय तथा विपिनचन्द्र पाल के जातीय साहित्य तथा जातीय सस्कृति के विचारों द्वारा कहीं अधिक प्रभावित हुए थे। देशी-विदेशी साहित्य के रस तथा रूपाश्रित सूक्ष्म तात्त्विक आलोचना के पश्चात् केवल देश-काल तथा जाति संस्कार की संकीर्ण बुनियाद को साहित्य-समीक्षा के मानदण्ड के रूप में ग्रहण कर लेने पर भी यद्यपि समीक्षा में समालोचक की गम्भीर दृष्टि अक्षुण्ण रही परन्तु फिर भी सस्कार-मुक्त-व्यापक दृष्टि संकुचित अवश्य हो गई थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त विगत युग के साहित्यादर्शों के प्रति अत्यधिक ममता के वशीभूत होकर उन्होंने बीसवी शताब्दी के संघर्षपूर्ण युग के साहित्य के भाव-पक्ष एवं कलापक्ष की अभिनव शैली पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सहानुभूति पूर्ण तथा सहृदय दृष्टि नहीं अपनायी। फलस्वरूप रवीन्द्रोत्तर साहित्य की भाव-वस्तु तथा रूप-परिकल्पना उनके अनुसार अधिकांश क्षेत्रों में साहित्यादर्शों की केवल परिपंथी ही नहीं, जातीय जीवन की स्थिति तथा पुनरुज्जीवन के लिए भी उसे हानिकारक माना गया है। आधुनिक पाश्चात्य मानवतावादी आदर्शों से प्रेरित साहित्य क्रमश: जिस भाववादी आदर्श का अतिक्रमण कर वस्तु-वादी जीवन-दर्शन को अपनाने में उद्यत हुआ था, वह उनके रसवादी चित्र को आकर्पित नहीं कर पाया था। केवल यह अभिनव जीवन-अन्वेषी वस्तुवादी साहित्य ही नहीं बल्कि उत्तरकाल में रवीन्द्रनाथ की देशकाल को अतिक्रान्त करनेवाली जीवन-चेतना तथा साहित्य-रूप से सम्बद्ध नये-नये परीक्षण-निरीक्षण, जातीय-संस्कार चेतना से प्रभावित मोहितलाल के लिए तो अर्थहीन भाव-विलास मात्र था। विगत युग के आदर्शों के प्रति मोहग्रस्त, जातीय-चेतना से प्रबुद्ध समालोचक मोहितलाल ने नवीन युग की जीवन चेतना एव साहित्य-रूप को न केवल सन्देह की दृष्टि से ही देखा, बल्कि उसमें उन्हें ह्रास के सुस्पष्ट चिह्न भी दिखाई दिए। उनकी नैराश्य पीड़ित जीवन-दृष्टि तथा साहित्य-समीक्षा पूर्णतया निरपेक्ष सत्य दृष्टि पर आधारित है --ऐसी बात निश्चय के साथ नहीं कही जा सकती। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह एक एकान्तिक साहित्य-भावुक व्यक्ति के अकृत्रिम विश्वास से उद्भूत तथा साहित्यिक उपलब्धि का परिणाम है।

यही मोहितलाल के साहित्य-तात्त्विक विचारों का संक्षिप्त परिचय है। तत्पश्चात् इन विचारों ने उनके बाङ्ला साहित्य समालोचना को कहाँ तक प्रभावित किया है, उसकी आलोचना की जा सकती है।

(2)

'मानसी', 'भारती', 'कालिकलम', 'नव्य भारत', 'प्रवासी', 'शनिबारेर चिठि' इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में मोहितलाल ने दीर्घकाल तक साहित्य-तत्त्व एवं साहित्य-समालोचना का अनुशीलन किया था। ढाका में अध्यापन के आठ वर्षों के व्यतीत हो जाने के पश्चात् सन् 1936 में उनका प्रथम समालोचना ग्रन्थ 'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही एक मननशील तथा सशक्त समालोचक के रूप में विभिन्न लोगों ने उनको अभिनन्दित किया। इस ग्रथ की भूमिका में मोहितलाल ने 19वीं शताब्दी के उस साहित्य को आधुनिक कहकर सम्बोधित किया, जिसमें मधुसूदन तथा बंकिम के साहित्य-सृजन का उन्मेप हुआ एवं रवीन्द्र-साहित्य में जिसकी परिणति हुई। उन्नीसवी शताब्दी के साहित्य की परम्परा तथा आदर्श-विरोधी आन्दोलन से प्रभावित होकर बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक में भावपक्ष एवं कलापक्ष सम्बन्धी जो नवीनता साहित्य में दिखाई दी, वह विचारशील मोहितलाल की दृष्टि को आकर्षित नहीं कर पाई। जातीय परम्परा से रहित इन आधुनिकता-वादियों की उन्होंने अत्यन्त निर्मम आलोचना की थी। मोहितलाल उन्हें आधुनिक न कहकर 'अति आधुनिक' कहते थे। साहित्य-रस का आस्वादन करते हुए आधुनिक युग के एक श्रेणी के साहित्यकारों के प्रति तीव्र आकर्षण तथा श्रद्धा और एक अन्य श्रेणी के लेखकों के प्रति उपेक्षा का भाव लिए हुए समालोचक के रूप में मोहितलाल की विशिष्टता तथा स्वातन्त्र्य कहाँ निहित है, वह स्पष्ट रूप से दिखाई दे जाएगी।

'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' की भूमिका तथा उसी शीर्षक पर आधारित एक प्रबन्ध में उन्होंने मधुसूदन-बंकिम को आधुनिक बाङ्ला काव्य एवं गद्य का स्रष्टा मानते हुए उसके कारणों का भी विश्लेषण किया है। उन्होंने कहा कि पाश्चात्य सभ्यता-संस्कृति के संघर्ष से उत्पन्न जागृति ने यद्यपि बाङ्ला जाति में नवीन प्राणों का संचार किया परन्तु उसकी सृजन-प्रेरणा के मूल में बाङ्ला जाति के जीवन-बोध का सजीव स्पन्दन था। इस ग्रंथ में संकलित मधुसूदन-बकिम से सम्बद्ध दो लघु-प्रबन्धों में उन्होंने अपने इस वक्तव्य को प्रकट किया है। दस वर्ष बाद 'श्री मधुसूदन' और बारह वर्ष बाद 'बकिम-वरण' तथा अठारह वर्ष बाद 'बंकिमचन्द्रेर उपन्यास' ग्रंथों में अपनी सूक्ष्म विश्लेषणात्मक शक्ति के बल पर जातीयता से ओत-प्रोत मौलिक स्रष्टा मधुसूदन तथा बकिमचन्द्र की प्रतिभा के जिस रूप का उद्घाटन किया, उससे न केवल उनके समकालीन विचारशील समालोचक ही प्रभावित हुए बल्कि परवर्ती पीढ़ी के लेखकों पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

वस्तुतः मोहितलाल ने अपनी स्वतन्त्र विचारधारा से उत्पन्न ज्ञान तथा अन्तर्दृष्टि के द्वारा मधुसूदन तथा बंकिमचन्द्र के साहित्य की जो समालोचना की,

उसी के कारण वे रवीन्द्रोत्तर समालोचना साहित्य में एक सशक्त समालोचक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। उनका विचार था कि अतीत से चली आ रही जातीय चेतना मधुसूदन के कवि-हृदय को भीतर-ही-भीतर प्रभावित करती रही होगी। इसी कारण पाश्चात्य काव्यादर्शों के आधार पर की गई महाकाव्य की रचना का दुष्परिणाम बाङ्ला जाति की गीतात्मकता में परिलक्षित होती है। मधुसूदन की काव्य-भाषा आडम्बरपूर्ण होते हुए भी वह भाषा अपने समग्र रूप में बाङ्ला भाषा की प्रकृति से भिन्न नहीं है। मधुसूदन की प्रतिभा का सर्वोत्तम अवदान है अमित्राक्षर छंदों की सृष्टि जो भावों को वहन करने की दृष्टि से अभिनव होते हुए भी उसकी बुनियाद बाङ्ला का पयार (बाङ्ला का एक अतुकान्त छंद) ही है—इस प्रकार के सूक्ष्मतम विचार-विश्लेषण के द्वारा इसे प्रमाणित कर उन्होंने जिस मौलिकता का परिचय दिया, अगर कहा जाए कि वह आज भी अतुलनीय है तो शायद अतिशयोक्ति न होगी। रंगलाल, हेमचन्द्र एवं नवीनचन्द्र की तुलना में मधुसूदन की काव्य-प्रतिभा की विशिष्टता तथा स्वातन्त्र्य का विश्लेषण करते हुए मोहितलाल ने जिस अन्तर्दृष्टि से काम लिया है, वस्तुतः वह उनकी मनस्विता का परिचायक है। यह प्रचलित धारणा है कि महाकाव्य की रचना करते हुए मधुसूदन प्रधानतः पाश्चात्य काव्यादर्शों से प्रभावित हैं, उस प्रभाव की प्रकृति एवं परिमाण आदि से सम्बद्ध प्रश्नों के द्वारा मधुसूदन-गवेषणा के एक नये आयाम की ओर मोहितलाल ने साहित्य-मर्मज्ञों का ध्यान आकर्षित किया। परन्तु उनके इस भावावेशपूर्ण कथन को परवर्ती समालोचकों ने सर्वसम्मति से स्वीकार नहीं किया कि मधुसूदन की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति 'मेघनाद-वध' महाकाव्य बाङ्ला-जीवन का गीति-काव्य है। परन्तु फिर भी मधुसूदन की काव्य-प्रतिभा के विश्लेषण के द्वारा रवीन्द्रोत्तर समालोचना जगत् में मोहितलाल ने शीर्षस्थ स्थान प्राप्त किया।

अपने साहित्यिक जीवन में मोहितलाल बंकिम की जीवन-चेतना तथा साहित्यादर्शों के द्वारा अत्यधिक प्रभावित रहे। इसी कारणवश शायद उन्होंने बंकिम-चर्चा में ही अपने समालोचक जीवन का अधिकांश समय व्यतीत किया। सन् 1928 में प्रकाशित 'बंकिमचन्द्र' शीर्षक प्रबन्ध से उन्होंने बंकिम की आलोचना शुरू की।[1] इस प्रबन्ध में बंकिम साहित्य के विश्लेषण की दिशा में अग्रसर न हो, उन्होंने एक श्रद्धावान भक्त की भाँति बंकिमचन्द्र के व्यक्तित्व तथा प्रतिभा के स्वरूप को खोजने का प्रयास किया है। इस प्रयास में प्रवृत्त होकर मोहितलाल इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि बंकिम की साहित्य-साधना का मूल प्रेरणा स्रोत था स्वजाति, स्वदेश तथा स्व-समाज और इनके अतिरिक्त मनुष्य का भाग्य तथा मनुष्यत्व के आदर्शों की खोज। उनकी कला-साधना जीवन-साधना का

1 बाद में 'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' में संकलित।

ही एक अंग थी। समन्वित जीवन के समग्र रूप की खोज ही उनके अन्वेषण का विषय था। इसलिए साहित्य में इस आदर्श को प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। परन्तु स्वजाति तथा स्वदेश-प्रीति की गहरी प्रेरणा से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि, कला-साधना के पहले हृदय की पवित्रता तथा सात्विकता एवं मनुष्यत्व का ज्ञान होना अधिक आवश्यक है। केवल एक प्रबन्ध की सीमित परिधि में मोहितलाल ने बंकिम-प्रतिभा के उत्स का विश्लेषण कर जिस गहन अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया वह वास्तव में ही किसी उत्तम कोटि के समालोचक की ही हो सकती है।

उक्त प्रबन्ध के सोलह वर्षों के पश्चात् प्रकाशित 'बाङ्लार नवयुग' (1945) ग्रंथ में बंकिम-प्रतिभा के स्वरूप का विश्लेषण करते हुए मोहितलाल ने और भी अधिक मननशीलता का परिचय दिया। इस ग्रंथ में उन्होंने कहा कि बंकिम-प्रतिभा मूलत: समन्वयवादी प्रतिभा है। उपन्यासों में, धार्मिक व्याख्यानों में, राष्ट्रीय-वार्ताओं में युग-प्रवृत्ति को स्वीकारते हुए भी जीवन के शाश्वत धर्म को कभी भी विस्मृत नहीं किया। युग धर्म के मर्म की उपलब्धि के मूल में थी सनातन सत्य की दृढ़ बुनियाद, इसीलिए उनकी समस्त रचनाओं में मानवता की महिमा को अभिव्यक्ति मिली है। भावों की कुशल अभिव्यक्ति तथा देह-धर्म में निहित आत्मा के ज्योतिर्मय आलोक के माध्यम से उनके साहित्य-सृजन में इस समन्वय-वादिता के प्रयास परिलक्षित होते हैं। बंकिम की समन्वयवादी दृष्टि का प्रमुख परिचय है कि उन्होंने जीवन की दोनों सीमाओं को—उर्ध्व एवं अध:स्थल को समान विस्मय के साथ देखा तथा जो प्रेम-भाव मनुष्य की देह तथा आत्मा में अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होता है, अपनी रचनाओं में उन्होंने उसी प्रेम का जयघोष किया। मोहितलाल मानते थे कि बंकिम का यह समन्वयवादी जीवन-बोध यद्यपि किसी सीमा तक पाश्चात्य मानवतावाद से प्रभावित रहा होगा किन्तु फिर भी वे तन्त्रोक्त जीवन-तत्त्वों के द्वारा सर्वाधिक प्रभावित रहे।

बंकिमचन्द्र की सृजनात्मकता में तन्त्र-तत्त्व के प्रभाव के सम्बन्ध में चाहे अन्य समालोचक एकमत न भी हों परन्तु जीवन के प्रति समन्वयवादी दृष्टिकोण ही बंकिम की समग्र सृजन-चेतना का मूल था—मोहितलाल के इस मननशील विश्लेषण के सम्बन्ध में शायद कोई मतभेद नहीं हो सकता।

'बाङ्ला नवयुग' के प्रकाशन के चार वर्षों के पश्चात् प्रकाशित 'बंकिम-वरण' (1949) ग्रंथ में बंकिम प्रतिभा के स्वरूप तथा महत्ता के विश्लेषण में समालोचक मोहितलाल की चिन्तनशीलता और अधिक विस्तार तथा गम्भीरता के साथ प्रकट हुई है। इस ग्रंथ में उनका वक्तव्य है—बंकिम का स्वजाति प्रेम साम्प्रदायिक मनोभावों से उत्पन्न संकीर्ण राष्ट्रवाद नहीं अपितु वह भारतीय जातीयता की उदारता पर आधारित है। उनका स्वदेश-प्रेम भी प्रकारान्तर से

उनके हृदय में निहित गहरी मानव-चेतना का ही एक रूप है। परिणामतः वह विश्व-प्रेम तथा भगवत्-प्रेम में परिणत हो गया है। मोहितलाल की धारणा है कि बंकिम के अनुशीलन-तत्त्व के मूल में बाङ्ला जातिगत तांत्रिक संस्कारों का प्रभाव है। बंकिम के अनुशीलन-तत्त्व के विश्लेषण में यह अभिमत किस सीमा तक ग्रहण योग्य है, यह विचारणीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अभिमत पर मोहितलाल के अपने जीवन-दर्शन का भी न्यूनाधिक प्रभाव पड़ा है। बंकिम-वरण के अन्तर्गत 'बंकिम प्रतिभार महत्त्व विचार', 'बंकिम साहित्येर रस-विचार' तथा 'अति आधुनिक समालोचक ओ बंकिमचन्द्र'—इन तीनों प्रबन्धों मे बंकिम-प्रतिभा के स्वातन्त्र्य एवं महत्ता का विश्लेषण करते हुए मोहितलाल की तीक्ष्ण विश्लेषण क्षमता एवं विचारों की मौलिकता दृढ़ विश्वास के साथ अभिव्यक्त हुई है। बंकिम-प्रतिभा के स्वरूप-निर्धारण में ऐसी गम्भीर एवं सूक्ष्म दृष्टि वास्तव में दुर्लभ है।

छह वर्षों के बाद प्रकाशित बंकिम चन्द्रेर उपन्यास' (1955) ग्रन्थ में एक वास्तविक समालोचक की आन्तरिक संवेदनशीलता तथा सहृदयता के माध्यम से मोहितलाल ने बंकिमचन्द्र के कवि-मानस के अन्तर्लोक में प्रवेश किया तथा उस अविस्मरणीय शिल्प की स्वतंत्र महत्ता तथा रस-सौन्दर्य के स्वरूप का उद्घाटन कर गहरी अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया। इस ग्रन्थ की भूमिका में साहित्य-पंडित तथा सहृदय समालोचक डॉ. श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय ने मोहितलाल की गहरी रस-दृष्टि की तुलना दुर्योधन की स्थूल-दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में, अर्जुन की अन्तर्दर्शी दृष्टि के साथ कर वास्तविक गुण-ग्राहिता का परिचय दिया है। उपन्यास में बंकिम के हृदय-रहस्य के स्वरूप का उद्घाटन करते हुए मोहितलाल केवल बंकिम की समालोचना-सूत्र के द्वारा ही प्रभावित नहीं हुए, ('यह सत्य है कि काव्य को जानकर लाभ होगा, किन्तु कवि को जानकर और भी लाभ पहुँचेगा') बल्कि तंत्रोक्त जीवनवाद एवं मैथ्यू आर्नल्ड की 'जीवन समालोचना' नीति के प्रयोग से उस समालोचना को सार्थकता प्रदान कर अत्यन्त मूल्यवान बना दिया है। ब्रैडले के शेक्सपियर-ट्रेजेडी तत्त्वों की तुलना में बंकिम की ट्रेजेडी के स्वतन्त्र रूप का प्रदर्शन करने में मोहितलाल स्रष्टा के सृष्टि-रहस्यों के अन्तर्लोक में प्रवेश करने में सफल हुए थे। इसी कारण मनस्वी समालोचक डॉ. श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय ने मोहितलाल की बंकिम समालोचना को बाङ्ला साहित्य का अभिनव कीर्तिस्तम्भ मानते हुए उनकी समालोचना-प्रतिभा के प्रति अपनी अपार श्रद्धा व्यक्त की है।

मोहितलाल कृत रवीन्द्र-समालोचना भी विचार-स्वातन्त्र्य में विशिष्ट स्थान रखती है। मुख्य रूप से 19वीं शताब्दी के बाङ्ला साहित्य की समालोचना में अधिकाधिक मनोनिवेश के कारण उनकी रवीन्द्र-समालोचना बहुत अधिक

व्यापक नहीं है। सन् 1928 से 1946 तक रवीन्द्रनाथ के कवि-मानस तथा सृजन-स्वातन्त्र्य पर उन्होंने समय-समय पर जो लेख लिखे, वे सब 'रवि प्रदक्षिण' नामक पुस्तक में संकलित हैं, जिसका प्रकाशन सन् 1946 में हुआ। तत्पश्चात् सन् 1952 तथा 1953 में उनके द्वारा रचित 'कवि रवीन्द्र एवं रवीन्द्र काव्य' नामक ग्रन्थ दो खंडों में प्रकाशित हुआ। मोहितलाल अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ में उस युग के रवीन्द्र-अनुयायियों की भाँति ही रवीन्द्र-प्रतिभा से मंत्र-मुग्ध थे। परवर्ती काल में विस्तृत अध्ययन तथा जीवन की अभिज्ञताओं के प्रभाव से विचारशक्ति के जाग्रत होने पर, रवीन्द्र-साहित्य के प्रति मुग्ध-भाव से उबरकर वे उनकी जीवन-दृष्टि तथा रचनाओं की समालोचना करने में जुट गये। समालोचक की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से प्रभावित उनकी इस निरपेक्ष समालोचना को रवीन्द्र-अनुरागियों ने यद्यपि रवीन्द्र-विरोधी कहा परन्तु अपने जीवन के अन्तिम चरण में रवीन्द्र-काव्य की व्याख्या करते हुए उन्होंने जिस ग्रन्थ की रचना की (कवि रवीन्द्र ओ रवीन्द्र-काव्य) उसमें उन्होंने स्वय को 'कविगुरु का एक प्राचीन शिष्य एवं मुक्तसंग भक्त' कहा है। वस्तुत: रवीन्द्र-काव्य की व्याख्या विश्लेषण तथा तात्पर्य का निर्णय करते हुए मोहितलाल ने इस ग्रन्थ में जिस निरपेक्ष लेकिन सूक्ष्म रस-दृष्टि का परिचय दिया है रवीन्द्र-साहित्य समालोचना के क्षेत्र में वह एक नवीन अध्याय का सूचक है।

'रवि प्रदक्षिण' में संकलित एक श्रेणी के प्रबन्ध रवीन्द्र-प्रतिभा की प्रशस्ति करते हैं, तो दूसरी श्रेणी के प्रबन्ध समालोचनामूलक है। स्वयं रवीन्द्रनाथ का भी यही मत था कि प्रशस्तिमूलक प्रबन्धों में 'रडोडेनड्रेन गुच्छ' तथा 'मृत्युर आलोके रवीन्द्रनाथ' में जीवन-चेतना तथा हृदय के अन्तस्तल में स्थित गहन आध्यात्मिकता की व्याख्या में मोहितलाल ने जिस मौलिकता का परिचय दिया है, रवीन्द्र-समालोचना में वह सुलभ नहीं। 'बाङ्लार रवीन्द्रनाथ' प्रबन्ध में जातीय-चेतना के कवि के रूप में तथा 'रवीन्द्र जन्मदिने' प्रबन्ध में जातीय संकट के क्षणों में मोहितलाल को रवीन्द्रनाथ ही बाङ्ला जाति एवं सत्य-धर्म के संरक्षक के रूप में परम श्रद्धेय व्यक्तित्व प्रतीत हुए थे। 'रवीन्द्र-वियोग' प्रबन्ध में उन्होंने रवीन्द्रनाथ को केवल 'युग-पुरुष' ही नहीं कहा बल्कि तेजोद्दीप्त, प्रबल आशावादी तथा जाति के पथ-प्रदर्शक के रूप में वर्णित कर उनकी पुण्यस्मृति में अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। 'पद्मावक्षे रवीन्द्रनाथ' नामक प्रबन्ध में मोहितलाल ने जातीय शिल्प के प्रति कवि के गहरे प्रेम का उल्लेख किया है तथा 'शिलाईदहे रवीन्द्रस्मृति' नामक प्रबन्ध में उन्होंने कहा है कि रवीन्द्रनाथ ने वहाँ रहते हुए प्रकृति को अत्यन्त निकट से देखा तथा यही कारण है कि उस दौरान रचित साहित्य अनुपम रस-माधुरी से युक्त हो गया है—आदि विचारों को व्यक्त कर उन्होंने समालोचक की सत्य-दृष्टि का परिचय दिया है।

इनके अतिरिक्त भी इस ग्रंथ में संकलित अन्य कई प्रवन्धों में रवीन्द्र-प्रतिभा के स्वातन्त्र्य के विश्लेषण में मोहितलाल जिस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं, निःसन्देह वह एक गम्भीर विचारशील एवं सूक्ष्मदर्शी समालोचक का ही हो सकता है। भारतीय भावनाओं के साथ यूरोपीय काव्य-पद्धति का समन्वय, प्राच्य रसवाद के साथ पाश्चात्य रूप-साधना का मेल तथा कवि-कल्पना की विस्तृत परिधि ने ही रवीन्द्र-साहित्य को श्रेष्ठ तथा महान बनाया; इन गुणों ने केवल उनके रचनात्मक साहित्य में ही विशुद्ध रस की सृष्टि नहीं को बल्कि उनके समालोचना-साहित्य को भी एक स्वस्थ दृष्टिकोण प्रदान कर उसे रसात्मकता प्रदान की है—मोहितलाल का यह मन्तव्य सर्वथा मान्य है।

रवीन्द्र साहित्य के दोष एव दुर्बलताओं को उक्त ग्रंथ में प्रदर्शित कर मोहित-लाल ने विचार व्यक्त किये हैं, वह भी समालोचक की स्वाधीन विचारधारा का ही परिणाम है। उनके मतानुसार रवीन्द्रनाथ मुख्यतः रूप-तान्त्रिक जीवनवादी (मोहितलाल की धारणा के अनुसार तंत्रोक्त जीवनवाद से प्रभावित) कवि हैं। विशेष से निर्विशेष में, रूप से अरूप के वायवीय जगत् में मानस-परिक्रमा ने उनके साहित्य-सृजन में दुर्बलता का संचार किया था। इससे पहले विपिनचन्द्र पाल, द्विजेन्द्रलाल राय एवं शशांकमोहन सेन ने भी रवीन्द्र-साहित्य पर यह आरोप लगाया था कि वह यथार्थ जीवन से कोसों दूर है। किन्तु उनमें से कोई भी मोहितलाल की भाँति अकाट्य तर्कों के द्वारा अपने वक्तव्य को प्रतिष्ठित नहीं कर पाया था। यह कहना कि रवीन्द्रनाथ रहस्यवादी कवि हैं, यह विचार मोहितलाल के अनुसार युक्तिसंगत नहीं। उनके मतानुसार ऐसा सजग एवं आत्मसचेतन कवि कभी भी रहस्यवादी नहीं हो सकता। यहाँ तक कि जीवन-देवता की अनुभूति में भी सत्यबोध की गहराई नही है। जातीय-भावनाओं से प्रेरित होकर कल्पना तथा कर्म-जीवन में सजग रवीन्द्रनाथ ने अपने जीवन के प्रथम चरण में जो अद्वितीय रचनाएँ लिखीं, वह उनके सृजनशील जीवन का सर्वोत्तम अवदान है। मोहितलाल के विचारानुसार परवर्तीकाल में भूमावाद से प्रभावित रवीन्द्रनाथ की भाव-वादी रचनाओं में जीवन की वह सजीव अनुभूति विद्यमान नही।[1] रवीन्द्रनाथ की भाव-प्रवण चेतना जीवन के वास्तविक धरातल को त्याग, कल्पना के ऊर्ध्वाकाश में विलीन हो जाती है, मोहितलाल ने उसे 'विवागिनी रागिनी' कहा है।

रवीन्द्र-साहित्य की समालोचना के क्षेत्र में मोहितलाल के सिद्धान्त स्वतन्त्र विचारों के कारण विशिष्टता लिए हुए हैं। वहु-प्रशंसित 'चित्रांगदा' नाट्य में देह तथा मन, भोग तथा त्याग, चरित्रगत स्वभाव तथा सृष्टि की बृहत्तर नीति के संघर्ष के कारण उन्हें उनके शिल्प में शिथिलता एवं दुर्बलता के लक्षण दिखाई दिए—

1. बाङ्लार नवयुग ओ रवीन्द्रनाथ

जिसकी उत्पत्ति, उनके अनुसार, कवि-कल्पना के सुसंगत नियन्त्रण की अक्षमता के कारण हुई होगी। मोहितलाल की धारणा है कि 'उर्वशी' कविता में उर्वशी को एक ही साथ कामनामयी तथा निष्कलंक रूप में वर्णित कर कवि ने स्व-विरोधी भावों का परिचय दिया है। रवीन्द्रकाव्य में इस प्रकार के कामनाहीन सौन्दर्य-प्रेम को मोहितलाल ने शिल्पगत वैराग्य कहकर उसकी आलोचना की है। सुप्रसिद्ध 'एबार फिराओ मोरे' कविता में मोहितलाल को यह विरोधी भाव स्पष्ट रूप से दिखाई दिए जिससे प्रभावित इस कविता में सुपरिकल्पित, सुसम्बद्ध तथा सुसम्पन्न रस की सृष्टि नहीं हो पायी। रवीन्द्रनाथकृत नाटक एवं उपन्यासों में कल्पना की वस्तुपरकता नहीं है इसलिए उनके द्वारा रचित चरित्रों में अनेक स्थलों पर सर्जक का ही आत्म-प्रतिबिम्ब दिखाई दे जाता है, मोहितलाल की ऐसी धारणा है। रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रचलित भाषा के समर्थन की तीव्र आलोचना करते हुए उन्होंने यह कहा कि प्रचलित भाषा शुद्ध भाषा का स्थान ग्रहण करने में सक्षम नहीं क्योंकि शुद्ध भाषा ही जातीय-संस्कृति की भाषा है तथा सभी विचारों को सुचारु रूप से वहन कर सकती है। दीर्घकाल के अनुशीलन के फलस्वरूप यदि इस भाषा के सौम्य एवं परिमार्जित रूप का आविष्कार न किया गया होता तो बाङ्ला भाषा आज भी अपनी आदिम गँवारूपन से शायद उबर न पाती।

'कवि रवीन्द्र तथा रवीन्द्रनाथ' के दो खंडों में मोहितलाल ने सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि सम्पन्न विश्लेषण के माध्यम से रवीन्द्रकाव्य की जो विशुद्ध साहित्यिक समालोचना आरम्भ की थी, साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में वह न केवल गम्भीर मननशीलता से युक्त हैं बल्कि एक प्रकृत रस-मर्मज्ञ समालोचक की परिपक्व विचार-बुद्धि से ओत-प्रोत है।

मोहितलाल के मतानुसार रवीन्द्रकाव्य रचना कौशल की उच्चतम सीमा को वहीं तक स्पर्श कर पायी है जहाँ तक कि वह संगीत-मुखरित छन्दों की सुषमा के सौष्ठव एवं लालित्य से परिपूर्ण है। प्रथम चरण में रचित उनकी कहानियों ने देश की मिट्टी से रस ग्रहण किया इसलिए साहित्य शिल्प की दृष्टि से भी जीवन्त, अकृत्रिम तथा अनुपम हैं। अपने साहित्यिक जीवन के जिस चरण में रवीन्द्रकाव्य में लय तथा संगीतात्मकता का बहिष्कार कर, निराभरण, सीधे-सपाट गद्य-रूप को प्रमुखता दी गई उसी समय से रवीन्द्र-प्रतिभा का ह्रास शुरू हो जाता है। विशेष से निर्विशेष भावों के जगत् में कवि-हृदय की यात्रा को भी मोहितलाल ने स्वधर्म की उपेक्षा कहते हुए उसकी आलोचना की है। रवीन्द्रनाथ की सर्जनात्मकता का यह एक और आयाम है जिसमें संस्कार-मुक्त आत्मा की सीमाहीन व्याप्ति के स्पष्ट संकेत निहित हैं—जातीय संस्कारों के मोह से ग्रस्त समालोचक मोहितलाल ने यह समझना ही नहीं चाहा। बाद की रचनाओं में रवीन्द्रनाथ की चेतना सभी संस्कारों एव बंधनों का अतिक्रमण कर मानव-जीवन के सभी स्तरों

का स्पर्श करना चाहती थी—जातीयतावादी समालोचक मोहितलाल इस विशेषता के प्रति भी आकृष्ट नहीं हो पाए थे। साहित्य के शिल्प एव विषय-वस्तु के क्षेत्र में रवीन्द्रनाथ द्वारा किए गए अभिनव प्रयोगों को भी विशिष्ट साहित्य संस्कारों से आच्छन्न मोहितलाल का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। मोहितलाल कृत रवीन्द्र-समालोचना की यह सीमाबद्धता ध्यान देने योग्य है।

रवीन्द्रनाथ की सृजनशीलता तथा काव्य कल्पना के दोषों एवं त्रुटियों का अनावरण करते हुए भी अन्ततः मोहितलाल ने यह स्वीकार किया है कि देश की पराधीनता-जनित सर्वांगीण पीड़ा से कवि-चित्त में जो आशाहीन, आनन्दहीन-वेदना का स्वर मुखरित हुआ है वह मानो किसी अंधेरे कारागार में क़ैदी वंदी मानवात्मा का आर्त चीत्कार है। किसी-किसी क्षेत्र में भावों के संघर्ष एवं कल्पना की दुर्वलता के होते हुए भी रवीन्द्र-साहित्य को उन्होंने गतिशील माना है। निर्विशेष मानवतावाद के पक्षधर होते हुए भी जातीय-जीवन के घोर संकटकाल में उन्होंने ही जाति तथा सत्य-धर्म को डूबने से वचाया, ऐसा मोहितलाल का विश्वास है।

मोहितलाल की रवीन्द्र-समालोचना किसी-किसी क्षेत्र में एक पक्षीय एवं विशिष्ट जातिगत संस्कारों से प्रभावित होते हुए भी, यह निर्विवाद है कि यह समालोचना एक अन्तर्दृष्टि सम्पन्न साहित्य-समीक्षक के निरपेक्ष साहित्य-विवेचन का ही परिणाम है।

मोहितलाल की शरत्-समालोचना तीन चरणों में प्रकाशित हुई—सर्वप्रथम 'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' (1936), ग्रन्थ में संकलित 'शरत्चन्द्र', उसके पश्चात् 1940 ईस्वी में लिखित 'शरत्-परिचय' नामक प्रबन्ध में, और फिर दस वर्षों के व्यवधान के पश्चात् सन् 1950 में प्रकाशित 'श्री कान्तेर शरत्चन्द्र' नामक 293 पृष्ठों के विस्तृत आलोचना ग्रंथ में। उनके अनुसार प्रत्यक्ष यथार्थ जगत् एवं जीवन शरत्चन्द्र की सर्जनात्मकता का उत्स होते हुए भी वे सच्चे अर्थों में आदर्शवादी थे। इसी अविचलित आदर्शवाद ने उनके साहित्य-सृजन को मानवता के महान मूल्यों से गौरवान्वित किया है। उनकी यथार्थवादी अनुभूतियों ने उनकी कल्पना को नियंत्रित किया है इसीलिए एक ओर जहाँ वे गहन अन्तर्दृष्टि के अधिकारी है वहीं दूसरी ओर सृजनात्मक क्षमता भी उसी अनुपात में समृद्ध है। शरत्चन्द्र की सृजनशीलता को पूर्णतः यथार्थवादी न कहकर मोहितलाल ने उसे यथार्थ की प्रतिमूर्ति कहा है। मोहितलाल के विचार से शरत्चन्द्र की कल्पना-सृष्टि में यथार्थ अत्यन्त जटिल है। शरत् साहित्य उसी जटिल समस्या का आवेग-दीप्त शिल्पगत रूप है।

मोहितलाल को शरत्चन्द्र की रचनात्मकता के विस्तृत विचार-विश्लेषण का सुयोग नहीं मिला था। चार खण्डों में समाप्त 'श्रीकान्त' उपन्यास में संवेदनशील लेखक का शिल्पी-हृदय स्वयं को कहाँ तक अभिव्यक्त कर पाया है, मोहितलाल ने

शरत्-आलोचना के अन्तिम चरण में इस विषय पर विस्तृत विचार-विश्लेषण कर उनके रचनात्मक स्वातन्त्र्य का परिचय दिया है। उनकी धारणा है कि प्रगतिवादी विचारधारा तथा सनातन आदर्शों के निरंतर संघर्ष से शरत्चन्द्र का शिल्पी-हृदय निरंतर आलोड़ित होता रहा। शिल्पी-हृदय के इस निरंतर संघर्ष ने ही उन्हें भावुक, चिन्ताशील तथा सिद्धान्तवादी लेखक में परिणत कर दिया था। देह एवं आत्मा के निरंतर द्वन्द्व ने भी उनके साहित्य को सजीवता तथा विशिष्टता प्रदान की है। मोहितलाल की धारणा है कि इस द्वन्द्व के मूल में भी भारतीय तान्त्रिक जीवन के संस्कार ही क्रियाशील रहे होंगे। 'श्रीकांत' के रचयिता शरत्चन्द्र की आलोचना करते हुए परिशिष्ट में मिडलटन मरे की एक उक्ति को उद्धृत करते हुए मोहितलाल ने कहना चाहा है कि सर्जक की अन्तर्दृष्टि ने ही शरत्चन्द्र को श्रेष्ठ जीवन-शिल्पी में परिणत कर दिया था। इस सिद्धहस्त कलाकार की विशिष्ट अभिव्यंजना शैली ने उनके साहित्य को साधारण पाठक के लिए भी हृदयग्राही बना दिया है—जिसका आधार यद्यपि विशुद्ध परिमार्जित भाषा ही है किन्तु जिसकी प्रकृति बोलचाल की प्रचलित भाषा के अत्यन्त निकट है।

चार खण्डों में समाप्त 'श्रीकान्त' उपन्यास को शरत्-साहित्य की भूमिका कहते हुए मोहितलाल ने लेखक के शिल्पी व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को उद्घाटित किया है। श्रीकान्त की कहानी को उन्होंने 'व्यक्ति-पुरुष का आत्म-दर्शन' कहा है। मोहितलाल का विश्वास है कि हृदय की सूक्ष्मतम एवं गहनतम अनुभूतियों द्वारा इस उपन्यास में जगत् तथा जीवन के शिल्पगत रूप को प्रस्तुत करते हुए शरत्चन्द्र ने अपनी अंतरात्मा को ही खोज निकाला है, उनके इस साहित्य-सृजन में यथार्थ जीवन तथा कल्पना, शिल्पी तथा शिल्प एकात्म हो एकाकार हो गये हैं। श्रीकान्त लेखक का आत्म-दर्शन होते हुए भी, उनके मतानुसार इस कहानी में आत्म-निरपेक्षता की ही प्रधानता है। वे मानते है कि इस निर्लिप्त दृष्टिकोण ने ही उन्हें इस युग के श्रेष्ठ जीवन-समालोचक के रूप में परिणत कर दिया था। न केवल निर्लिप्त दृष्टि बल्कि जीवन के रहस्योद्घाटन में भी शिल्पी शरत्चन्द्र के पास एक ऐसी अविचलित दृष्टि थी, जिसके द्वारा उन्होंने श्रीकान्त उपन्यास की बिखरी हुई घटनाओं को भी एक सुसम्बद्ध रूप प्रदान कर दिया था। मोहितलाल ने उस दृष्टि को भाव-दृष्टि कहा है। इस दृष्टि के प्रभाव से ही श्रीकान्त उपन्यास में शरत्चन्द्र ने यथार्थ जीवन की सृष्टि की है। मोहितलाल का अभिमत है कि श्रीकान्त एक ही साथ वस्तु एवं भाव का समन्वित रूप है।

'श्रीकान्तेर शरत्चन्द्र' ग्रंथ के तेरह परिच्छेदों में मोहितलाल ने शरत्चन्द्र-वर्णित नारी-प्रेम कहानी की व्याख्या एवं विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण में सम्भव है अत्युक्ति भी हो, किन्तु उनका मुख्य वक्तव्य बुद्धिदीप्त है। प्रेम के देह-तत्त्व की आलोचना करते हुए भी मोहितलाल ने यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय

दिया है।

श्रीकान्त के चरित्र का विश्लेषण करते हुए भी मोहितलाल की मौलिक दृष्टि का आभास मिलता है। उनके अनुसार इस चरित्र में नैतिक दृढ़ता का अभाव है। श्रीकान्त वैरागी अथवा उदासीन नहीं अपितु वह विद्रोही है। अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह ने ही उन्हें आत्म-प्रवंचना के पथ पर आकर्षित किया। अभया के चरित्र विश्लेषण में भी मोहितलाल की अभिनव दृष्टि-भंगिमा का परिचय मिलता है। उनके मतानुसार अभया का समाज के प्रति विद्रोह नारी हृदय की अनुभूति से उत्पन्न नहीं अपितु पुरुष-सुलभ मानस की उपज है। इस चरित्र की सृष्टि करते हुए शरत्चन्द्र ने इसे अतिरंजित रूप प्रदान किया है। प्रभावशाली युक्तियों के सहारे मोहितलाल ने यह प्रमाणित किया है कि अभया का सामाजिक विद्रोह पूर्वापर सामंजस्यहीन है, अत: वह केवल अतिरंजित ही नहीं बल्कि अतिशयोक्ति-पूर्ण भी है। चरित्र-चित्रण की इस त्रुटि ने उपन्यास की रसात्मकता को कम किया है।

मोहितलाल का विचार रहा कि नारी के प्रति अत्यधिक सहानुभूति ने शरत्चन्द्र की जीवन-दृष्टि को पक्षपातपूर्ण बनाया है। व्यापक सहानुभूति की प्रेरणा से सभी प्रकार के मनुष्यों को तथा समस्त जीवन की अभिज्ञता को आत्मसात् करने की शक्ति के अभाव के कारण ही वह दृष्टि खण्डित एवं अपूर्ण है। परिणामत: शरत्-साहित्य केवल पाठकों के हृदय को झंकृत करने में सक्षम है, पाठक-मन को सभी संशयों एवं जिज्ञासाओं के धरातल से ऊपर उठाकर ज्ञान तथा प्रेम के समन्वय से रस-मंडित नहीं कर पाता। श्रीकान्त उपन्यास के सभी चरित्र शरत्चन्द्र के शिल्पी-हृदय की अकृत्रिम अनुभूतियों से सृजित हैं, इसलिए वे सहज ही पाठक-हृदय को आकर्षित कर लेते हैं। परन्तु मोहितलाल की धारणा है कि यदि समालोचक की तीक्ष्ण दृष्टि से उन्हें जाँचा-परखा जाए तो सम्भवत: उनमें अनेक विसंगतियाँ देखी जा सकती हैं।

अन्तर्दर्शी समालोचक मोहितलाल का कथन है कि चरित्र-चित्रण से सम्बद्ध यह विसंगतियाँ शिल्पी शरत्चन्द्र के शिल्पी-मानस के विरोधी सस्कारों के अन्तर्द्वन्द्व से उत्पन्न हैं। उनका विचार है कि इसी मानसिक अन्तर्द्वन्द्व ने उनकी सर्जनात्मकता को तीव्रता प्रदान कर उनके साहित्य में अनुपम रस की सृष्टि की।

'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' के 'शरत्चन्द्र' प्रबन्ध में ऐतिहासिक परिवर्तन की दृष्टि से भी शरत्-प्रतिभा की समीक्षा की है। उनका कथन है कि बंकिमचन्द्र की कल्पना में उच्चादर्शों का आवेग था, जिसके पथ पर यथार्थ कभी किसी बाधा की सृष्टि नहीं कर पाया। रवीन्द्रनाथ की कल्पना में आदर्श तथा यथार्थ के समन्वय का प्रयास था, यथार्थ को वहाँ रूपान्तरित किया गया था। दूसरी ओर शरत्चन्द्र की कल्पना में यथार्थ ने प्रबल आवेग की उत्पत्ति कर समस्या को अत्यन्त जटिल

वना दिया है। 'शरत् परिचय' प्रवन्ध में शिल्पी जीवन की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख कर उन्होंने दर्शाया है कि यदि शरत्चन्द्र की अनुभूतियों पर ज्ञान का कठोर नियन्त्रण रह पाता तो बाङ्ला साहित्य में यथार्थवाद को पूर्णता प्राप्त हो सकती थी। उनकी कवि-दृष्टि निर्वैयक्तिक और अनुभूति में प्रखर होते हुए भी उनके शिल्प में सृजन की व्यापकता तथा विस्तार का अभाव है। बाङ्ला-भाषियों की जातिगत शाक्त एवं वैष्णव साधना की युग्म धारा से उनका शिल्प सिंचित है। रघुनन्दन का दृढ़ शासन नियन्त्रित समाज वास्तविक रूप में शरत्-साहित्य में प्रतिविम्बित हुआ है—मोहितलाल के अनुसार, उसमें दार्शनिक, समाज-तात्त्विक, अथवा ऐतिहासिक मूल्यों पर विचार नहीं किया गया है। वे मानते हैं कि शरत्चन्द्र जिस सीमा तक सहजात प्रत्यक्ष दृष्टि से प्रभावित हैं, उनके शिल्प की सजीवता भी वहीं तक सीमित है। जब से जीवन के प्रति सहज दृष्टि को त्याग समाज-विज्ञान एवं व्यक्ति-धर्म के विभिन्न जटिल प्रश्नों की मीमांसा में उन्होंने अपनी अनुभूति एवं कल्पना को नियोजित किया—तब से उनकी रचनाओं ने सजीवता को खोकर न्याय-शास्त्र का स्थान ग्रहण कर लिया है।

मोहितलाल के उपर्युक्त समस्त विचारों से सभी सहमत होंगे, ऐसी आशा नहीं की जा सकती। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनकी शरत्-समालोचना तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि एवं सूक्ष्म विचार-विश्लेषण से समृद्ध है। शरत्चन्द्र की विभिन्न कहानियों एवं उपन्यासों में जाग्रत समाज की समस्याएँ, ज्वलन्त देश-प्रेम एवं साम्यवादी मानव-चेतना का जो परिचय मिलता है—मोहितलाल कृत शरत्-समालोचना में उसका विस्तृत विचार-विश्लेषण नहीं किया गया है। फलत. उनकी शरत्-समालोचना अपूर्ण है।

बाङ्ला साहित्य के इन चार आधार-स्तम्भ रचनाकारों की साहित्यिक-प्रतिभा का मूल्य निर्धारित करके ही मोहितलाल ने अपने समालोचना-कर्म को समाप्त नहीं किया। उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के अनेक प्रतिनिधि कवि एवं लेखक के साहित्यिक मूल्यों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने बाङ्ला समालोचना-साहित्य के दैन्य को ही कम नहीं किया अपितु उसकी गुणात्मक प्रगति में भी सक्रिय योगदान दिया। दो शताब्दियों के लम्बे समय में विस्तृत अनेक लेखकों के साहित्य के मूल्य-निर्धारण के अतिरिक्त भी समय-समय पर उन्होंने आधुनिक साहित्य की गति-प्रकृति, भाषा, साहित्य के चिरन्तन आदर्श एवं युग-रुचि एवं प्रवणता के परिणामस्वरूप उन आदर्शों के ह्रास का परिचय देते हुए जिन निबन्धों की रचना की, वे उनकी उज्ज्वल मननशीलता के परिचायक हैं। इस स्तर के प्रबन्धों में 'साहित्येर आदर्श', 'नित्य ओ साहित्य', काव्य ओ जीवन', 'साहित्ये समस्या', 'साहित्ये सुनीति', 'समाज ओ साहित्य', 'साहित्ये अश्लीलता', 'साहित्ये स्टाइल', 'साहित्येर शिरःपीड़ा', 'पूँथिर प्रताप', संवाद-पत्र ओ साहित्य',

'काव्ये आधुनिकता', 'अति आधुनिक प्रतिभा', 'अति आधुनिक बाङ्ला कविता' 'बाङ्लार प्रगतिवादी साहित्यिक', 'बाङ्ला साहित्ये ट्रेजेडी', 'हास्यरस ओ ह्यूमर', 'साहित्य सेवा ओ साहित्येर व्यवसाय', 'साहित्य ओ युगधर्म', 'साहित्येर आसर', 'कवि ओ काव्य', 'काव्य ओ जीवन', 'बाङ्ला साहित्ये उपन्यास', 'नाटकीय कथा', 'आधुनिक साहित्येर भाषा', 'आधुनिक साहित्येर परिणाम' इत्यादि विशेप रूप से उल्लेखनीय हैं। उपर्युक्त निबन्धों में मोहितलाल ने आधुनिक बाङ्ला साहित्य के उन्मेष, विकास-क्रम, पश्चात्-गति, तथा किसी-किसी साहित्य-गोष्ठी के स्वैराचार आदि से सम्बन्धित, अपने ज्ञान तथा विश्वास के अनुसार जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे एक सजग साहित्य-समीक्षक की आशा, आकांक्षा, उद्वेग तथा हताशा अत्यन्त प्रवल विश्वास के साथ अभिव्यक्त हुई हैं।

रंगलाल, हेमचन्द्र तथा नवीनचन्द्र की काव्य-प्रतिभा के सम्बन्ध में मोहितलाल ने अपने पूर्ववर्ती आलोचकों से सर्वथा भिन्न मत का पोषण किया है। उनके अनुसार रंगलाल की की प्रकृति मूलतः रक्षणशील है। समय की गति, काल का प्रभाव अथवा नवीन भावों के उन्माद ने मधुसूदन की भाँति उनके कवि-चित्त में किसी प्रकार के विक्षोभ को जन्म नहीं दिया। इसी कारणवश उनके काव्य में आधुनिकता का स्पन्दन नहीं है। 'वृत्र-संहार' काव्य के कारण यद्यपि हेमचन्द्र अत्यधिक लोकप्रिय हो गए थे, किन्तु मोहितलाल का मत है कि उनके द्वारा की गई वीररस की सृष्टि अनेक स्थलों पर हास्यास्पद एवं अर्थहीन हो गई है; प्रेम का चित्रण भी गतानुगतिक ही है, रस की जैसी सृष्टि हुई है यह जात्रा गान के स्तर की है। उनकी काव्य-भाषा अपरिपुष्ट, स्थूल तथा व्यंजना रहित है। उनके काव्य में बाङ्ला जाति के प्राणों का जो परिचय मिलता है वह भी स्थूल एवं आत्म-तृप्ति से युक्त है। विजातीय संस्कारो के अंतर्द्वन्द्वों से मधुसूदन की भाँति उन्होंने आत्म-साक्षात्कार नहीं किया। नवीनचन्द्र का आवेग उनके समान आन्तरिक होते हुए भी अन्धा है, भाव-कल्पना बहिर्मुखी है। विदेशी भाव-वस्तु एवं स्वदेशी भाव-प्रवणता ने उनके कवि-हृदय में तीव्र आलोड़न की सृष्टि की जिसके फलस्वरूप उनकी काव्य-प्रेरणा ने असंयमित भावातिरेक को जन्म दिया है।[1]

महाकाव्य के उस अक्षम अनुकरण के युग में बिहारीलाल चक्रवर्ती, सुरेन्द्रनाथ मजुमदार, अक्षयकुमार बड़ाल, देवेन्द्रनाथ सेन आदि प्रमुख कवियों ने अपने साहित्य में स्वतन्त्र भावों का जो परिचय दिया उसके स्वरूप का उद्घाटन करने में मोहितलाल की सूक्ष्मदर्शिता वास्तव में आश्चर्य में डाल देती है। उनके ; । नुसार भावप्रवण कवि बिहारीलाल ने वैयक्तिक स्वच्छन्दता तथा इस जीवन के माधुर्य को प्राप्त करने की अभिलाषा को आध्यात्मिकता का बाना पहनाकर

1. आधुनिक बाङ्ला साहित्य', रंगलाल, हेमचन्द्र ओ मधुसूदन।

बाङ्‌ला काव्य में आधुनिकता को जन्म दिया है।[1] मोहितलाल के अनुसार सुरेन्द्रनाथ मजुमदार इस युग के प्रथम कवि हैं जिन्होंने पाश्चात्य अभिनव वैज्ञानिक दर्शन एवं इतिहास के आलोक में अपनी भाव-धारा को परख कर कल्पना-संयम के द्वारा यथार्थ के साथ समन्वय स्थापित करना चाहा।[2] मोहितलाल की धारणा है कि देवेन्द्रनाथ सेन की अतृप्त रूप-तृष्णा एवं दैहिक प्रेम-चेतना की रहस्यात्मक उपलब्धि ने आधुनिक बाङ्‌ला काव्य को नवीन सुरों में बाँधा है।[3] मोहितलाल का विचार है कि अक्षय बड़ाल के काव्य में अन्तर्गत एवं बहिर्जीवन संघर्ष के संयत तथा गम्भीर चित्रण ने बाङ्‌ला साहित्य में आधुनिकता के स्तर को और ऊपर उठाया है।[4] उनके मत में लोकप्रिय कवि सत्येन्द्रनाथ दत्त की काव्य-प्रेरणा के मूल में विशुद्ध कल्पना नहीं अपितु कल्पना-विलास, सजग बुद्धि, विद्या, भावना, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति एवं विचित्र छन्द-कौशल निहित है। वाक्-पद्धति का अभिनव प्रयोग, उसकी समृद्धि का प्रयास तथा बाङ्‌ला बोलचाल की भाषा के प्रयोग में असाधारण निपुणता ने ही आधुनिक बाङ्‌ला काव्य में उन्हें विशिष्ट स्थान प्रदान किया है।[5] मोहितलाल के विचार में आधुनिक बाङ्‌ला काव्य में द्विजेन्द्रलाल राय की विशिष्ट काव्य-भंगिमा तथा अभिनव स्वर, पौरुष-दीप्त भाव, भावावेग की आन्तरिकता, तीव्र जातीयता-बोध तथा गहन मानवता-बोध ही उनका सर्वश्रेष्ठ योगदान है।[6]

समकालीन कवियों में करुणानिधान बन्द्योपाध्याय की कविताओं ने केवल कवि के आवेग की अकृत्रिमता तथा गहनता के कारण ही समालोचक मोहितलाल का ध्यान आकर्षित नहीं किया था अपितु उनका अद्‌भुत निर्माण-कौशल एवं तन्मय रूपोल्लास भी इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा होगा।[7] कुमुदरंजन मल्लिक की कविता, उनके विचार में रसोत्तीर्ण है, क्योंकि उनकी काव्य-प्रेरणा की उत्पत्ति विशुद्ध बाङ्‌ला संस्कृति से हुई है तथा उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त जीवन्त, सहज एवं सरल है।[8] मोहितलाल के मतानुसार यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त अत्यधिक आत्म-सचेतन विद्रोही कवि हैं। उनका विद्रोह प्रचलित काव्य-रीति के विरुद्ध साहित्यिक-विद्रोह तथा भाववाद के विरुद्ध वस्तुवाद का विद्रोह है। उनके विचार में

1. 'आधुनिक बाङ्‌ला साहित्य', बिहारीलाल चक्रवर्ती
2. 'आधुनिक बाङ्‌ला साहित्य', सुरेन्द्रनाथ मजुमदार
3. 'आधुनिक बाङ्‌ला साहित्य', देवेन्द्रनाथ सेन
4. 'आधुनिक बांङ्‌ला साहित्य', अक्षयकुमार बड़ाल
5. 'आधुनिक बाङ्‌ला साहित्य', सत्येन्द्रनाथ दत्त
6. 'साहित्य वितान', द्विजेन्द्रलाल राय
7. 'साहित्य वितान', कवि करुणानिधानेर कविता
8. 'साहित्यवितान', कवि कुमुदरंजन मल्लिक

यतीन्द्रनाथ का काव्य मात्र काव्य ही नहीं है बल्कि वह बंधन-पीड़ित मानव-आत्मा के दु.खों की ज्वलन्तं अभिव्यक्ति है। विशिष्ट कवि-प्रकृति के कारण रूप के स्थान पर विरूप रस की सृष्टि कर उन्होंने अपनी कविताओं में स्वतंत्र एवं मौलिक अनुभूतियों को बड़ी कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है।[1]

तत्पश्चात् मोहितलाल समकालीन अभिनवत्व अन्वेषी कवियो के काव्य की समालोचना करने लगे थे।[2] वह समालोचना जितनी आक्रामक तथा ध्वंसात्मक है, उस हिसाब से सृजनात्मक नही है। उनके इस आक्रमण का प्रथम लक्ष्य गद्य कविता के छन्द हैं। इस अभिनव छद के प्रवर्तक के रूप में सर्वप्रथम उन्होंने रवीन्द्रनाथ पर ही आक्रमण किया है। सन् 1936 मे लिखित 'रवीन्द्रनाथेर गद्य-कविता'[3] प्रबन्ध में उन्होंने लिखा है कि जीवन के अन्तिम अध्याय में युवा-प्रतिभा के ह्रास के कारण काव्य-साधना में रवीन्द्रनाथ ने रूप के स्थान पर अपरूप की साधना की है। गद्य-छंद में रचित उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'पृथिवी' को उन्होंने 'पहलवानी पैंतरा' कहते हुए उसकी आलोचना की है। उसी वर्ष लिखी गई 'अति-आधुनिक बाङ्ला कविता' प्रबन्ध में उन्होंने गद्य-कविता को 'सोनार पाथर-बाटी' कहते हुए व्यंग्य किया है। उनके मतानुसार गद्य कविता अधिकतर 'रिद्म' के अभाव के कारण काव्य-रस की सृष्टि करने में सक्षम नहीं है। अनेक युक्तिसंगत तर्कों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने गद्य-छंद को छंद ही नही माना है। उनके अनुसार काव्य-रूप की सृष्टि एवं सौन्दर्य-सृष्टि के लय एवं तुकान्त छंद अत्यन्त सहायक सिद्ध होते हैं, अत: उन्हें व्यर्थ नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त भावपक्ष एवं कलापक्ष के एकात्म हो जाने पर ही काव्य की उत्पत्ति होती है इसीलिए रसात्मकता की सृष्टि के लिए छंदों का प्रयोग अपरिहार्य है। गद्य वाक्य-प्रधान होने के कारण उसके द्वारा रस की सृष्टि सदा सम्भव नहीं। गद्य-छंद मे रचित रस-विहीन काव्य को उन्होंने 'बीड़ी और माचिस' या 'प्याली और तश्तरी' (Cup and Saucer) की तरह काव्य कहकर व्यंग्य किया है।

गद्य साहित्य के मूल्यों पर विचार करते हुए मोहितलाल ने सर्वप्रथम विद्यासागर की प्रतिभा की विशिष्टताओं पर ध्यान दिया है। उनके अनुसार विद्यासागर ही गद्य के सर्वप्रथम शैली-सम्पन्न लेखक हैं, क्योंकि उनकी विशिष्ट रचना-पद्धति में प्राचीन बाङ्ला संस्कृति की अत्यन्त कोमल परिमार्जित, शुद्ध, संयत रस-चेतना के साथ आधुनिक युक्तियुक्तता, परिमाण-बोध तथा स्वाभाविकता का चमत्कार-पूर्ण समागम दृष्टिगत होता है। बंकिमचन्द्र, रवीन्द्रनाथ तथा शरत्चन्द्र की महान्

1. 'साहित्य वितान', कवि जतीन्द्रनाथ सेनगप्त
2. 'साहित्य वितान' अति-आधुनिक बाङ्ला कविता
3. 'साहित्य वितान', पृ. 44

प्रतिभा के स्पर्श से बाङ्ला साहित्य ने स्वयं को किस प्रकार अनन्य रस-सौंदर्य से मंडित कर अपार महिमा अर्जित की, इस सम्बन्ध में समालोचक मोहितलाल के विचारों की आलोचना पहले ही की जा चुकी है। उत्तर शरत् उपन्यासकारों में से ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय तथा माणिक बन्द्योपाध्याय के उत्तम शिल्प ने मोहितलाल का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया था। ताराशंकर के श्रेष्ठ उपन्यास 'कवि' को आधार बनाते हुए मोहितलाल ने उनकी शिल्पगत प्रतिभा का विश्लेषण किया है, यद्यपि कुछ कहानियों एवं उपन्यासों की आलोचना भी इसी प्रसंग में की गयी है। उनके मतानुसार ताराशंकर की शिल्प-दृष्टि यथार्थवादी होते हुए भी यथार्थ-भेदी है। उनकी यह यथार्थवादिता विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिणाम है। मोहितलाल की धारणा थी कि तांत्रिकों का हृदयावेगरहित जीवन-दर्शन ही इस वैज्ञानिक दृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। उन्होंने सुदूर अतीत से प्रवाहित जातीय जीवन की धारा से शिल्प-सृष्टि के उपकरण संग्रहीत किए, शायद तभी उनके द्वारा रचित कहानियाँ एवं उपन्यास इतने जीवन्त तथा सजीव बन पड़े हैं। मोहितलाल मानते हैं कि 'कवि' उपन्यास में स्त्री-पुरुष की देह एवं आत्मा के रहस्यों की उपलब्धि करते हुए ताराशंकर ने तांत्रिक-दृष्टिकोण का परिचय दिया है। 'कवि' का मूल स्वर गीतात्मक वेदना से स्पन्दित होते हुए भी कथानक की सम्पूर्णता, शैली की सुडौलता, चरित्र तथा घटना-संयोजन आदि के वैचित्र्य के सुन्दर समन्वय ने इस उपन्यास के शिल्प को उत्कृष्टता प्रदान की तथा बाङ्ला साहित्य में उसे अविस्मरणीय बना दिया। इसके अतिरिक्त केवल इसी उपन्यास में ही नहीं अपितु ताराशंकर की परवर्ती अन्य कहानियों एवं उपन्यासों में भी यह नाटकीय कौशल उनकी शिल्प-सिद्धि में सहायक हुआ है, ऐसा मोहितलाल का विश्वास है। सर्वोपरि मोहितलाल के मतानुसार ताराशंकर की शिल्प-प्रतिभा को उजागर करने से मुख्य रूप से उनका व्यापक यथार्थ बोध तथा न केवल सभी वर्गों के मनुष्यों के प्रति बल्कि मनुष्यत्व के प्रति उनकी अविचलित श्रद्धा सहायक सिद्ध हुई।

विभूतिभूषण बन्द्योपाध्याय के उत्कृष्ट उपन्यास 'पथेर पांचालि' के अन्तर्लोक में प्रवेश कर मोहितलाल ने इस सहज शिल्पी की प्रतिभा का विश्लेषण किया है। उनके विचार में जीवन-शिल्पी के तौर पर विभूतिभूषण को सार्थकता प्रदान करने में उनकी कवि-दृष्टि ने अतुलनीय योगदान दिया। किसी मानसिक, सामाजिक समस्या के प्रति सचेतनता तथा कहानी के विषयवस्तु को चमत्कारपूर्ण बनाने के अतिरिक्त उनकी इस कवि-दृष्टि ने सरल जीवन-गाथा को भी उत्कृष्ट शिल्प के स्तर पर पहुँचा दिया। इस दृष्टि के माध्यम से ही उन्होंने बड़ी सुगमतापूर्वक शिशु-मन के अन्तर्जगत में प्रवेश कर सर्वथा नवीन तथा परम रोचक शिल्प जगत को पाठकों के सम्मुख उद्घाटित कर दिखाया। उनके विचार में अनन्तकाल से

प्रवाहित स्थान-काल के परिप्रेक्ष्य में जीवन के विराट् रहस्यों के सतत् चिंतन ने विभूतिभूषण के शिल्प को सार्थक बनाया—जो रहस्य-बोध सिद्धहस्त शिल्पकार शरतचन्द्र के पास भी नहीं था। परन्तु विभूतिभूषण की कल्पना गीतिप्रधान कवियों की भाँति आत्मकेन्द्रित थी इसलिए मोहितलाल ने उन्हें जीवन का कवि न कहकर जीवन का चित्रकार कहते हुए उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया है। मोहितलाल मानते थे कि ताराशंकर की तरह वैज्ञानिक-जिज्ञासा या रस-पिपासा उनके मन में न थी। इसी कारणवश विभूतिभूषण को एक उत्तम शिल्पकार मानते हुए भी मोहितलाल ने उन्हें महान उपन्यासकार नहीं माना। उनके मतानुसार व्यक्ति-निरपेक्ष नाटकीय दृष्टि के अभाव के कारण विभूतिभूषण जिस अनुपात में शिल्पी-सुलभ सौन्दर्य की सृष्टि करने में सक्षम हुए थे उस अनुपात में वे जीवन की विविधताओं को उद्घाटित नहीं कर पाए।[1]

माणिक बन्द्योपाध्याय के प्रथम चरण के उपन्यासों में काव्य-कल्पना के साथ मनोविज्ञान के समन्वय से यद्यपि मोहितलाल संतुष्ट थे परन्तु उनकी परवर्ती कहानी-उपन्यासों में कल्पना का अभाव, चेतन वास्तव के बदले जड़ वास्तव के प्रति अत्यधिक आकर्षण, विकृत एवं कुरूप तथा तुच्छ विषयों के विस्तृत वर्णन ने उन्हें सौन्दर्य-प्रेमी कवि से रूप-विद्रोही कर्मकार में परिणत कर दिया, ऐसा मोहितलाल का विचार था। मोहितलाल मानते हैं कि उनके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'पद्मानदीर माँझी' में यद्यपि उनकी लेखकीय शक्ति उभर कर पाठकों के सम्मुख आयी है परंतु वह रस-सृष्टि की शक्ति नहीं है। मोहितलाल के अनुसार इस सशक्त रचनाकार की परवर्ती कहानियाँ और उपन्यास रसात्मकता की दृष्टि से उत्तम नहीं। वर्ग-विभाजित समाज को शिल्पगत रूप प्रदान करने में माणिक बन्ध्योपाध्याय के उत्तरकाल की कहानियाँ एवं उपन्यास रस-सृष्टि की दृष्टि से उत्कृष्ट न होते हुए भी जीवन की यथार्थता के लिए अत्यन्त प्रभावकारी बन पड़े थे। रसवादी समालोचक मोहितलाल ने शायद इसीलिए उस ओर ध्यान ही नहीं दिया।[2]

समालोचक मोहितलाल ने अश्रु एवं हास्य के अपूर्व सम्मिश्रण से जीवन के करुण-मधुर शिल्प-रूप के स्रष्टा विभूतिभूषण मुखोपाध्याय की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। वे केवल वात्सल्य-रस की सृष्टि में ही सिद्धहस्त नहीं थे। उनकी सभी रचनाओं के भीतर एक अत्यन्त संयमी, सहिष्णु, निरपेक्ष, कोमल-हृदय किन्तु तीक्ष्ण रस-दृष्टि से सम्पन्न शिल्पकार के अस्तित्व को मोहितलाल ने खोज निकाला।[3] उनके विचार में 'बनफूल' (डॉ. बलाईचाँद मुखोपाध्याय) की जीवन-

1. 'साहित्य वितान', दुईखानि उपन्यास
2. 'साहित्य वितान', वर्तमान बाङ्ला साहित्य,
3. उपरिवत्

दृष्टि वैज्ञानिक की जड़-दृष्टि है, जीवन को खंडों में विच्छिन्न कर देखने के ही वे अभ्यस्त है। जीवन के प्रति जिस गहरी रहस्यात्मक-दृष्टि के प्रभाव से रचनाकार की चेतना में जीवन का समग्र रूप चित्रित हो जाता है—मोहितलाल के विचार में बनफूल के शिल्पी मानस में उस दृष्टि का नितान्त अभाव था। इसी कारणवश उनके विचारानुसार बनफूल अपनी रचनाओं में किसी ऐसे चरित्र की सृष्टि नहीं कर पाए, जो ताराशंकर के चरित्रों के समान पाठकों के मन को आकर्षित करने में समर्थ हो। मोहितलाल के अनुसार बनफूल के द्वारा कल्पित चरित्रों में 'विरूपता है, स्वरूपता नहीं', इसी कारण वे व्यक्ति के हृदय की गहराई को छू नहीं पाए। यह असमर्थता ही उनकी रचनाओं की दुर्बलता का मूल कारण बनी।[1]

मोहितलाल के विचार से, शैलजानन्द मुखोपाध्याय केवल आंचलिक जीवन के चित्रण में ही दक्ष नहीं हैं बल्कि वास्तविक जीवन-बोध के भी शिल्पी हैं। उनका यथार्थ-बोध किसी शास्त्र अथवा किन्हीं तत्त्वों से प्रभावित नहीं है, बल्कि जीवन को मुक्त और उदार दृष्टि से देखने का परिणाम है। परन्तु मोहितलाल मानते है कि यह यथार्थ-बोध प्रत्यक्ष सामाजिक जीवन का अतिक्रमण कर व्यक्ति सत्ता की गहराई को स्पर्श नही कर पाया। जगदीश गुप्त ने मानव बुद्धि अथवा सचेतनता के भी अगोचर एक प्रकार के अद्भुत यथार्थ को शिल्पगत रूप प्रदान किया है—जिसमें लेखक की मौलिक दृष्टि प्रतिफलित हुई।[2] शरदिन्दु बन्द्योपाध्याय के रहस्य-रस की तृष्णा तथा अतीत के इतिहास के योग से रोमांस की सृष्टि ने बाङ्ला कथा-साहित्य में जिस रोचकता एवं रसात्मकता का संचार किया मोहितलाल के अनुसार वह जीवन-रस से परिपूर्ण रसिकता का परिचायक है। मोहितलाल के अनुसार, मनोज बसु की कहानियों एवं उपन्यासों में शिल्पी की तन्मयता का अभाव होते हुए भी नाटकोचित कला-कौशल, ग्राम्य-जीवन से सम्बद्ध रोमांस की सृष्टि तथा कल्पना की एकाग्रता ने उनके शिल्प को उत्तमता प्रदान की। सरोजकुमार राय चौधुरी न केवल आंचलिक जीवन के चित्रकार हैं अपितु उनकी जीवन-दृष्टि, देश-काल समाज, यहाँ तक कि प्रवृत्ति तथा देह-संस्कार की सीमा का भी अतिक्रमण कर मानव-मन के अन्तर्जगत की निगूढ़तम क्षुधा तथा परम-तृप्ति का भी बोध कराती है। रमापद मुखोपाध्याय की काव्यात्मक अभिरुचि ध्वंसोन्मुख ग्राम्य-जीवन को साहित्य का रूप प्रदान कर उन्हें आधुनिक कथाकारों में विशिष्ट स्थान का अधिकारी बनाएगा, अपनी आलोचना में मोहितलाल द्वारा अभिव्यक्त यह विचार आज सर्वथा सत्य प्रमाणित हो चुका है। कौतुक एवं सूक्ष्म व्यंग्य-रस की सृष्टि में सिद्धहस्त (अमूल्यकुमार दासगुप्त) तीक्ष्ण दृष्टि सम्पन्न

1. 'साहित्य वितान', वर्तमान बाङ्ला साहित्य
2. उपरिवत

होते हुए भी काल्पनिकता से अत्यधिक प्रभावित थे, इसी कारण मोहितलाल ने संदेह व्यक्त किया कि शायद ही उन्हें साहित्य में कोई स्थायी महत्त्व मिल पायेगा। प्रमथनाथ बिशी के विषय में विचार व्यक्त करते हुए यद्यपि उन्होंने समकालीन बाङ्ला साहित्य के एक सशक्त लेखक के रूप में उन्हें स्वीकार किया परन्तु उनके मतानुसार एक उपन्यासकार के रूप में वे शिल्पगत सफलता प्राप्त नहीं कर पाए। उनके मतानुसार कथावस्तु की निरंकुश गति तथा चरित्र-चित्रण में स्वप्न-सुलभ काल्पनिकता के होते हुए भी उनके उपन्यास न केवल भावुकता-रहित हैं अपितु निजस्व मन के भावों से रंजित होने के कारण बहुत हद तक डायरी जैसी रचना का भ्रम उत्पन्न करते हैं।[1]

'साहित्य वितान' के अन्तर्गत 'वर्तमान बाङ्ला साहित्य' से सम्बद्ध लम्बी आलोचना की परिसमाप्ति में उन्होंने कहना चाहा है कि सृजनात्मक साहित्य में सामाजिक अथवा सामयिक रूप-विकृति को यदि प्राधान्य दिया जाए तो उससे वैज्ञानिक तथ्य अथवा तत्त्व-जिज्ञासा तृप्त हो सकती है, परन्तु उससे मानव की निगूढ़तम चेतना का दिव्य-दर्शन कदापि सम्भव नहीं। इस प्रकार की रचना-शीलता पाठकों के मानसिक कौतूहल को तो शान्त कर सकती है परन्तु मर्मस्पर्शी रस की सृष्टि करने में वह सर्वथा असमर्थ सिद्ध होगी।

'साहित्य विचार' ग्रन्थ में नाट्य तत्त्व विषयक आलोचना में (नाटकीय कथा) मोहितलाल ने अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है कि बाङ्ला जाति के जीवन-संस्कार तथा जीवन-चेतना विशुद्ध नाटक के अनुकूल नहीं हैं, इसका एक-मात्र कारण है कि उसकी मानसिकता भावुकतावादी है, वस्तुपरक नहीं। इसी-लिए मोहितलाल के अनुसार बाङ्ला नाटकों में मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति अथवा प्राणों की अभिव्यक्ति नहीं है। इसी कारणवश केवल पौराणिक नाटक ही नहीं, अपितु बाङ्ला में रचित सभी श्रेणियों के नाटक भावप्रधान नाटकों (मेलो-ड्रामा) में परिवर्तित हो गए हैं। काव्य तथा कथा-साहित्य से सम्बद्ध आलोचना-समालोचना में प्रबल उत्साही होते हुए भी सम्भवतः इसी कारणवश बाङ्ला नाटकों के मूल्य-निर्धारण में उन्होंने अधिक रुचि नहीं दिखाई। द्विजेन्द्रलाल राय जैसे ख्याति-प्राप्त नाटककार की काव्य-प्रतिभा की आलोचना करते हुए भी उनके नाटकों के विषय में उन्होंने कोई विचार प्रकट नहीं किये। केवल विगत शताब्दी के दीनबंधु मित्र तथा वर्तमान शताब्दी के रवीन्द्र मैत्र की नाट्य-प्रतिभा की ओर वे आकृष्ट हुए थे तथा उनकी प्रतिभा पर विचार प्रकट करते हुए उन्होंने जिस सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचय दिया वह बाङ्ला नाट्य-समालोचना साहित्य में सुलभ नहीं। मोहितलाल के मतानुसार दीनबन्धु ने अपने मार्जित संस्कार को अति-

1. साहित्य वितान', वतमान बाङ्ला साहित्य।

क्रमण कर मानव-मात्र को निरपेक्ष दृष्टि से देखा था। अपनी इस दुर्लभ क्षमता के कारण ही नाटकों के क्षेत्र में उन्होंने अभूतपूर्व सफलता अर्जित की थी। उनके मतानुसार केवल 'नील-दर्पण' में ही नहीं बल्कि अन्य कई नाटकों में भी प्रत्यक्ष यथार्थ पर आधारित सत्यपरक जीवन-दृष्टि अद्भुत संवेदनशीलता से युक्त है। इसके अतिरिक्त मोहितलाल का विश्वास है कि दीनबन्धु के शिल्पी-चित्त के गहनतम प्रदेश में प्रवाहित हास्य रस ने उनके द्वारा निर्मित चरित्रों में प्राणों का संचार कर, उन्हें सजीवता प्रदान की है।[1] मोहितलाल मानते हैं कि रवीन्द्र मैत्र की नाट्यकृतियों के मूल में उनकी अकृत्रिम जीवन-प्रीति तथा जीवन-रस की रसिकता है। उनके नाटकों में भी जीवन के प्रति यही सहज प्रेम हास्य-रस के आलोक में निखर कर जीवंत हो उठा है। इसके अतिरिक्त उनके सुप्रसिद्ध नाटक 'मानमयी गर्ल्स स्कूल' (जिसका सफल मंचन भी हो चुका है) को देशकाल के अनिवार्य प्रभाव ने यथार्थपरक रूप प्रदान किया है। मोहितलाल रवीन्द्र मैत्र के हास्य-रस को बंगाल के पारस्परिक हास्य या कौतुक के रूप में स्वीकार नहीं करते, उनके विचार में, उक्त हास्य-रस केवल सतही न होकर जीवन को कहीं गहरे छूता भी है, जिस कारण उनकी नाट्यकृतियाँ जीवन की समालोचना में परिणत हो गयी हैं।[2]

चिरन्तन काल से चले आ रहे समग्र जीवन के रहस्य प्रगतिवादी लेखकों के अनुसंधान और जिज्ञासा का विषय कभी नहीं रहे। इसीलिए शायद मोहितलाल ने उनकी रचनात्मकता की ओर कभी अपनी कृपादृष्टि नहीं डाली। उन्होंने इस स्तर के लेखकों को रस-बोधविहीन मानते हुए उनकी कटु आलोचना की है। उनके विचार में प्रगतिवादी साहित्य में युगानुकूल गति तो है परन्तु शाश्वत काल के आदि-अंत की स्थिति नहीं है। प्रगतिवादी लेखकों ने मृत्यु को ही जीवन का अंत मान चिरंतन काल के स्थान पर क्षणिक जीवन को ही अधिक प्राधान्य दिया है। विकृत देह तथा मन की स्नायु-गत दुर्बलता को प्रज्ञा तथा प्रतिभा का मूल कारण मानते हुए प्रगतिवाद के नाम पर साहित्य को भी विकृत बना दिया है। प्रगतिवादियों को उन्होंने जड़वादी, आस्थाहीन, प्रेमहीन तथा धर्महीन आदि कहा है। महान साहित्य की सृष्टि के लिए हृदय, मन तथा आत्मा के सम्मिलित प्रयास तथा ज्ञान एवं प्रेम की समान शक्ति पर मोहितलाल ने अत्यधिक बल दिया हैं।[3]

एक जिम्मेदार समालोचक के तौर पर अपने ज्ञान एवं विश्वास के अनुरूप मोहितलाल ने विशुद्ध भाषा (साधु भाषा) के समर्थन में जो तर्क प्रस्तुत किए

---

1. आधुनिक बाङ्ला साहित्य, दीनबंधु मित्र।
2. 'साहित्य वितान', रवीन्द्र मैत्र।
3. 'साहित्य वितान' बाङ्लार प्रगतिवादी साहित्यिक।

यद्यपि उनकी मननशीलता में कोई संदेह नहीं तथापि परवर्तीकाल में वह सर्व-सम्मति से स्वीकृत नहीं हो पाया।[1] साहित्यिक विचारों के क्षेत्र में मोहितलाल पूर्णतया 19वीं शताब्दी के आदर्शों से प्रभावित थे, ऐसे आदर्श जो देह की वास्तविकता को मान्यता देते थे परन्तु आत्मा को अधिक महिमामय और महत्त्वपूर्ण मानते थे। एक विशेष स्तर का समकालीन साहित्य जीवन के इस उच्चादर्श का परित्याग कर केवल ऐन्द्रियता और मांसलता के द्वारा जीवन को उपलब्ध करना चाहता था, इस कारण वे अत्यन्त विक्षुब्ध थे।[2] उनका दृढ़ विश्वास था कि इस युग के लेखक जाति-देश-काल के प्रति अपने दायित्व की उपेक्षा कर साहित्य-सृजन में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को प्राधान्य दे रहे हैं, कदाचित् इसीलिए समकालीन साहित्य क्रमशः ह्रासोन्मुखी होता जा रहा है।[3] आधुनिक साहित्य के इस अधःपतन की चिन्ता ने मोहितलाल को विशुद्ध साहित्य के विचार-जगत् से जातीय-भावना के सीमित जगत् में दुर्निवार रूप से आकर्षित किया। बाङ्ला-जाति के भविष्य की चिन्ता ने उनके विक्षुब्ध मन में एक ऐसे आवेश की सृष्टि की जिसके परिणामस्वरूप स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् उनके प्रिय बंगाल प्रदेश के खंडित रूप तथा दुर्दशा का अवलोकन कर उन्होंने जातीय कांग्रेस-विरोधी, यहाँ तक कि महात्मा गाँधी विरोधी असहिष्णु मनोभाव का परिचय भी दिया। इस दौरान उन्होंने साहित्य-सम्बन्धी जिन प्रबन्धों की रचना की अथवा साहित्य-सभाओं में भाषण दिए, उनमें साहित्य चिंता से अधिक बाङ्ला-जाति के भविष्य की चिंता को ही अधिक प्रमुखता मिली। उनके समालोचक जीवन के अन्तिम चरण में रचित 'बाङ्लार नवयुग', 'बाङ्ला ओ बांगाली' ग्रंथ उनकी स्वजाति चिंता का प्रत्यक्ष परिणाम हैं। पहले ग्रंथ में उन्होंने बाङ्ला-जाति को बंकिम-विवेकानन्द की जातीयता तथा शक्तिशाली मानवता के आदर्शों के द्वारा जाग्रत करने का प्रयास किया। अपने दूसरे ग्रंथ में ऐतिहासिक पर्यालोचना के सहारे उन्होंने बाङ्ला जाति के स्वतन्त्र वैशिष्ट्य के प्रति देशवासियों का ध्यानाकर्षण किया है। 'बाङ्लार नवयुग' में उन्होंने रवीन्द्रनाथ के व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा महामानवतावाद को जातीयता विरोधी स्वप्नमय आदर्शवाद कहते हुए व्याख्या की है। 'जयतु नेताजी' ग्रंथ में वे नेताजी सुभाषचन्द्र के संघर्षशील पौरुष के सशक्त आविर्भाव का स्वागत करते हैं। जीवन के अन्तिम चरण में उनके द्वारा सम्पादित 'बंग-दर्शन' एवं 'बंग-भारती' नामक दोनों पत्रिकाओं में उन्होंने जातीय चेतना-प्रबुद्ध साहित्य को अत्यधिक महत्ता प्रदान की है। इसके अतिरिक्त अन्तिम समय

1. 'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' आधुनिक साहित्येर भाषा
2. 'साहित्य वितान', साहित्य ओ युगधर्म
3. 'आधुनिक बाङ्ला साहित्य', आधुनिक साहित्येर परिणाम

में आध्यात्मिक विचारों (जिसका परिचय 'अभयेर कथा' (सम्पादित), 'जीवन-जिज्ञासा' (1358 बंगाब्द, 1912 ई.)) तथा तंत्र-तत्त्व की आलोचना[1] ने उनके हृदय को इतनी गम्भीरता से प्रभावित किया कि वे क्रमशः साहित्य समालोचना के जगत् से दूर हटते चले गए।

मोहितलाल से पूर्व बाङ्ला समालोचना साहित्य में बंकिमचन्द्र एवं रवीन्द्रनाथ की श्रेष्ठता सर्वजन स्वीकृत है। समालोचक के रूप में मोहितलाल इन दोनों मनीषी समालोचकों के उत्तराधिकारी हैं। परन्तु पूर्ववर्ती समय का होते हुए भी बंकिम की युक्तिवादी एवं तुलनामूलक समालोचना के द्वारा वे जितना प्रभावित हुए थे, रवीन्द्रनाथ के एकान्तिक सौन्दर्यवादी एवं रसवादी समालोचना के द्वारा उतना प्रभावित नहीं हुए। रवीन्द्रनाथ ने वास्तविक समालोचना को साधना माना है। रोमान्टिक कवि की निविड़ सौन्दर्य-सृष्टि, अति सूक्ष्म रस-बोध तथा पूजा के मनोभावों ने उनके साहित्यिक विचारों को सृजनात्मक साहित्य के समकक्ष बना दिया है। मूलतः सौन्दर्य-सचेतन रोमान्टिक कवि होने के कारण मोहितलाल ने भी साहित्य मीमांसा में सौन्दर्य एवं रस की सृष्टि के मानदण्ड को अस्वीकार नहीं किया। लेकिन साहित्य की समालोचना में मुख्य रूप से पाश्चात्य साहित्य-तत्त्वों के आदर्शों को स्वीकार कर लेने के कारण उनकी समालोचना केवल प्रशस्ति-मूलक न होकर निरपेक्ष साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में अपना स्वतन्त्र स्थान रखती है। रवीन्द्रनाथ के समान मोहितलाल भी रस-सृष्टि की अनिर्वचनीयता को स्वीकार करते हैं। परन्तु साहित्य प्रकारान्तर से जीवन की ही समालोचना है अथवा जाति, परिवेश तथा काल के प्रभाव से ही जीवन-भावनाएँ साहित्य का शिल्प रूप ग्रहण कर लेती हैं—पाश्चात्य साहित्य-तत्त्वों के इन समस्त सूत्रों से प्रभावित होकर साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र में मोहितलाल की समालोचना ने सम्पूर्णतया पृथक् रूप धारण कर आधुनिक बाङ्ला समालोचना साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन की सृष्टि की है। उनकी समालोचना केवल रस-प्रबुद्ध विद्वान की प्रशस्तिमूलक रचना नहीं अपितु एक सचेतन, मननशील, युक्तिवादी समालोचक के साहित्यिक मूल्यों का वास्तविक विचार-विवेचन है। बाङ्ला साहित्य में नवीन समालोचना-पद्धति के प्रणेता के रूप में उनके असाधारण कृतित्व को उनके जीवितावस्था में ही स्वीकृति मिल चुकी थी। उनकी मृत्यु के पश्चात् उन्हें जो सुदृढ़ स्थान प्राप्त हुआ, वह वर्तमान युग की युक्तिसंगत, तर्क-प्रधान, समाज-सचेतन समालोचना ही उसका ज्वलन्त प्रमाण है।

---

1. बाङ्ला ओ बंगाली।

उपसंहार

आधुनिक बाङ्ला साहित्य में मोहितलाल एक मौलिक प्रतिभावान कवि एवं समालोचक के रूप में प्रतिष्ठित हैं, यद्यपि सशक्त नाट्य-काव्य एवं मननशील प्रबन्ध-लेखक के रूप में उन्होंने व्यापक ख्याति अर्जित की। प्रस्तुत ग्रन्थ की सीमा-बद्धता के कारण उनके नाट्य-काव्यों की विशद् आलोचना संभव न हो सकी। सूक्ष्म विश्लेषणात्मकता तथा भाव-गहनता से परिपूर्ण प्रबन्ध हीरक-खंडों के समान सुंदर जाज्वल्यमान होते हुए भी उनके अधिकांश प्रबन्ध साहित्य-तत्त्व एवं साहित्य-समालोचना मूलक होने के कारण मैंने उनकी पृथक् रूप से आलोचना की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया। प्रश्न यह उठता है कि कवि एवं समालोचक के रूप में मोहितलाल की विशिष्टता क्या है, इस सम्बन्ध में यहाँ विचार करना शायद अप्रासंगिक न होगा।

रवीन्द्र युगीन कवियों में मोहितलाल ने अपनी स्वतन्त्र प्रतिभा के बल पर विशिष्ट स्थान प्राप्त किया—पूर्ववर्ती आलोचना में इस बात का बार-बार उल्लेख किया जा चुका है। इसलिए कवि रूप में वे कभी लोकप्रियता अर्जित नहीं कर पाए। उनके कवि-मानस की विचित्र भावानुभूति तथा विभिन्न जीवन-तत्त्वों का सम्मिश्रण ही उनकी इस असमर्थता का कारण है। वैष्णव रस-तत्त्व, वेदान्तिक अद्वैतवाद, उमर खैय्याम का देहवाद, तन्त्र-तत्त्व का देहात्मवाद, कतिपय पाश्चात्य कवियों की रूप-तन्मयता, तथा काव्यादर्श ने उनकी कवि-चेतना को जटिल बना दिया था। इस असंगत जीवन-तत्त्व एवं भावानुभूतियों पर आधारित कविताएँ पाठकों के लिए अत्यन्त दुरूह तथा दुर्बोध हो गई थीं। भावों की गहनता मोहितलाल के काव्य का अन्यतम गौरव है—काव्य-रसिकों ने इसे बिना किसी दुविधा के स्वीकार किया है। परन्तु उनकी अभिव्यक्ति की पद्धति इतनी गम्भीर एवं दुरूह है कि साधारण पाठकों के लिए उसे समझ पाना संभव नहीं। मोहितलाल की इस बेमेल मानस-क्रिया के साथ काव्य की यह अबोध्य कठोरता युक्त हो जाने के कारण उनकी कविताएँ लोकप्रिय नहीं बन पायीं। स्वभाव से कवि होते हुए भी

मोहितलाल के व्यक्तित्व में आत्म-समालोचक की सत्ता सदा प्रच्छन्न रूप से विद्यमान थी। जीवन-तत्त्व की स्थापना में अत्यन्त जटिल तथा अभिव्यंजना की अत्यन्त-गम्भीर शैली के कारण ही उनका काव्य साधारण काव्य-पाठकों में समादृत नहीं हो पाया—वे स्वयं भी इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं थे तथा किसी-किसी काव्य की भूमिका में उन्होंने इस बात का उल्लेख भी किया है। इसलिए स्वरचित काव्य की स्वीकृति के लिए वर्तमान काल पर निर्भर न होकर भवभूति की भाँति उन्होंने भविष्य पर यह निर्णय छोड़ दिया। उनकी यह प्रत्याशा व्यर्थ नहीं थी। इस युग के काव्य-रसिक समाज में उनकी भाव-गम्भीर कविता के काव्य-मूल्यों की स्वीकृति ही इस बात का प्रमाण है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जन्मजात कवि मोहितलाल क्या अपनी काव्याभि-व्यक्ति में सहज नहीं हो सकते थे? इसके उत्तर में यही कहना उचित होगा कि यह उनके लिए कदापि सम्भव न था। इसका कारण है, कवि-चेतना की दृष्टि से मुख्यत: रोमान्टिक होते हुए भी अभिव्यक्ति के क्षेत्र में वे विशुद्ध क्लासिक-पंथी थे। क्लासिक संस्कृत साहित्य का वाक्-बंध, उपमा, चित्रात्मकता तन्त्रोक्त-साधना की प्रणाली में व्यवहृत वीभत्स रस की सृष्टि के लिए प्रयुक्त अनेक उत्कट शब्द, वाग्मिता, अति-तीव्र इन्द्रिय-सचेतन पर्यवेक्षण-शक्ति ने अनजाने ही उनकी शैली में जो सघनता की उत्पत्ति की—चाहते हुए भी इसका अतिक्रमण कर पाना उनके लिए सम्भव न था। फिर भी कवि-भावना तथा उनकी अभिव्यंजना-शैली का आभिजात्य वर्तमान युग के रसिक काव्य-पाठकों को आकर्षित करने में सर्वथा सक्षम है।

मोहितलाल ने अपने लम्बे कवि-जीवन में अनेक कविताओं की रचना की परन्तु काव्य-ग्रन्थ का संकलन करते हुए उन्होंने सामयिक पत्रिकाओं में प्रकाशित अपनी सभी कविताओं का संकलन नहीं किया। अपितु उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करते हुए स्वरचित कविताओं के प्रति स्वाभाविक ममता को त्याग कर केवल उन्हीं कविताओं का चयन किया जो उनकी अपनी सूक्ष्म समालोचना की दृष्टि से रसोत्तीर्ण थी। इसी कारणवश दीर्घ-काल तक कवि के रूप में सृजनरत होते हुए भी उनके प्रमुख काव्यग्रंथों की संख्या केवल चार ही रही। इन सुनिर्वाचित चार कविता-संकलनों को ही वे काव्य-मूल्यों की दृष्टि से तात्पर्य-पूर्ण मानते थे—एक छात्र के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने अपना यह विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है (मोहितलालेर पत्रगुच्छ, पृ. 83) वस्तुत: काव्य के भाव-पक्ष को यथार्थवादी रूप तथा कलापक्ष को उत्तम रूप प्रदान करने का जैसा शिल्पी-सुलभ प्रयास मोहितलाल ने किया, वह आधुनिक काव्य-रचना के युग में दुर्लभ है। उनके काव्य में व्यक्त यथार्थपरक जीवन-जिज्ञासा तथा अभिनव अभिव्यंजना शैली किसी-किसी समकालीन सशक्त कवि को अत्यधिक प्रभावित कर एक युग-विशेष की

सृष्टि में सहायक सिद्ध हुई थी इसका उल्लेख इससे पूर्व संक्षेप में किया जा चुका है।

कवि-रूप में असफल व्यक्ति ही समालोचक बन जाता है, इस कहावत को मोहितलाल के समालोचक-जीवन ने पूरी तरह से नकार दिया है। मोहितलाल में एक सार्थक कवि तथा मननशील समालोचक का सुंदर समन्वय दृष्टिगत होता है। उनकी साहित्य-समालोचना को 'ऐकेडेमिक' तथा अस्पष्ट कहते हुए यद्यपि कुछ साहित्यिकों ने उसकी आलोचना की है तथापि विदेशी साहित्य-समालोचना पद्धति के आदर्शों पर बाङ्ला समालोचना साहित्य को दृढ़ आधार प्रदान करने का जो प्रयास मोहितलाल ने किया, वह इससे पूर्व कहीं दिखाई नहीं देता। वस्तुतः बंकिमचन्द्र ने जिस तुलनात्मक समालोचना पद्धति का पथ प्रदर्शित किया था, उस पर अग्रसर होते हुए मोहितलाल ने अत्यन्त सचेतन रूप से तथा गहरी निष्ठा के साथ उसे प्रशस्त किया तथा बाङ्ला समालोचना साहित्य के स्तर को समृद्ध किया। इसे तो मानना ही होगा कि सम्प्रति बाङ्ला समालोचना-साहित्य अत्याधुनिक पाश्चात्य समालोचना से प्रभावित होकर और भी विश्लेषणात्मक बन साहित्य-मीमांसा के प्रति नवीन गवेषणात्मक प्रयोग कर रही है। परन्तु सूक्ष्म विश्लेषण तथा संश्लेषण के कारण मोहितलाल ने साहित्य-मीमांसा के क्षेत्र में जिस समग्र दृष्टि का परिचय दिया—आधुनिक समालोचना साहित्य में उस पूर्ण दृष्टि का नितान्त अभाव है—मेरा यह मन्तव्य अप्रिय होते हुए भी सत्य है। इस अत्याधुनिक समालोचना में साहित्य के देह का कंकाल-विश्लेषण तो है, परन्तु अन्तर्निहित रस का विश्लेषण नहीं है। पाश्चात्य समालोचना-पद्धति के विशेष अनुरागी होते हुए भी प्राच्य अलंकार तत्त्व में विद्यमान रसवाद को मोहितलाल ने कभी अस्वीकार नहीं किया। इसीलिए उनकी जीवन-धर्मी समालोचना में जो सजीवता तथा सरसता दृष्टिगत होती है, आज की पाश्चात्य-प्रभावित वस्तुपरक विश्लेषणात्मक समालोचना में उसका नितान्त अभाव है।

मोहितलाल ने जीवन को जैसे देह और आत्मा की समग्रता में स्वीकार किया था, उसी प्रकार वे यह भी मानते थे कि साहित्य में रस की सृष्टि तभी सम्भव है जब भाव-वस्तु एवं अभिव्यंजना में पूर्ण सामंजस्य हो। साहित्य में जिस प्रकार भाव, दृष्टि की प्रधानता को वे आंशिक दृष्टि मानते थे, उसी प्रकार वस्तुगत दृष्टि की प्रधानता को भी उन्होंने खंडित दृष्टि मानते हुए साहित्य-मीमांसा में उसे अनन्य गुरुता प्रदान नहीं की। इसी कारण जीवन के समग्र रूप की उपलब्धि में जिस प्रकार उन्होंने पूर्ण-दृष्टि पर बल दिया था, उसी प्रकार साहित्य-समालोचना में भी आलोचक की पूर्ण-दृष्टि पर अत्यधिक बल दिया था। इस पूर्ण-दृष्टि को वे 'कवि-दृष्टि' कहते थे मोहितलाल मानते थे कि इस प्रकार की दृष्टि एक विशेष प्रकार की प्रातिभ शक्ति है जिसे केवल विद्यार्जन अथवा मेधा के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। उनके मतानुसार समालोचक की यह दृष्टि पूर्वजन्म के संस्कारों

से प्राप्त दिव्य-दृष्टि है। समालोचक की प्रातिभ शक्ति अथवा दिव्य-दृष्टि के सम्बन्ध में उनका यह विचार शायद आधुनिक शुष्क बौद्धिकतावादी रस-बोध से रहित विश्लेषण-प्रवण समालोचकों को मान्य नहीं होगा। यह प्राज्ञ अभिमत इस युग के बुद्धि-अभिमानी विदग्ध समालोचकों को मान्य है या नहीं, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि समालोचना के लिए प्रातिभ-शक्ति को अत्यधिक महत्त्व प्रदान कर मोहितलाल ने इस स्तर के साहित्य को मर्यादा के जिस उच्चासन पर प्रतिष्ठित करना चाहा था, वर्तमान-युग में इस प्रकार का प्रयास वास्तव में अत्यन्त विरल है।

जीवन-क्रम

1888 (1265, 11 कार्तिक बंगाब्द) ज़िला नदिया के काँचड़ापाड़ा गाँव में, ननिहाल में वैद्यवंश में जन्म; काँचड़ापाड़ा के पास हालिशहर स्कूल में विद्याध्ययन, शिशु-मन पर ग्राम्य-प्रकृति का स्थायी प्रभाव।

1904 हुगली के बलागढ़ उच्च अंग्रेज़ी विद्यालय से एंट्रेंस परीक्षा में उत्तीर्ण।

1908 कलकत्ता मेट्रोपॉलिटन इन्सटिच्यूशन (वर्तमान विद्यासागर कॉलेज) से स्नातक परीक्षा में उत्तीर्ण कालेज में पढ़ते हुए 'जाह्नवी' पत्रिका में कविता प्रकाशित। स्नातक की परीक्षा में उत्तीर्ण होनेके बाद 'मानसी' एवं 'वीर-भूमि' पत्रिकाओं में कविता तथा निबंधों की रचना (1908—1915)।

1909 एम. ए. की पढ़ाई के दौरान बाराकपुर के रायसाहब योगेन्द्रनाथ राय की कन्या तरुलता के साथ विवाह (1313, बैशाख बंगाब्द)।

1910 आर्थिक कठिनाइयों के कारण स्नातकोत्तर परीक्षा न देकर कलकत्ते के तालतला हाई स्कूल में अध्यापन। वहीं बहुपाठी तथा सुयोग्य साहित्य शिक्षक के रूप में स्वीकृति। परीक्षा भवन में सुप्रसिद्ध कविता 'नागार्जुन' की रचना।

1912 पहली काव्य-पुस्तिका 'देवेन्द्रमंगल' प्रकाशित। कवि करुणानिधान वन्द्यो-पाध्याय, सत्येन्द्रनाथ दत्त, जतीन्द्र मोहन बागची, जतीन्द्रनाथ सेनगुप्त के साथ परिचय। जतीन्द्र मोहन बागची के साथ जोड़ासाँको में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन।

1913 रवीन्द्रनाथ नोबल पुरस्कार से विभूषित। मोहितलाल का रवीन्द्रानुराग।

1914 सरकारी राजस्व विभाग में क़ानूनगो का पद ग्रहण। उत्तर बंग में तीन वर्ष का प्रवास। शिलाईदह में दूसरी बार रवीन्द्रनाथ के साथ साक्षात्कार। प्रकृति के रुद्र-मधर रूप का दर्शन तथा अपनी कविताओं में सशक्त रूप में उसकी अभिव्यक्ति।

1919 सरकारी नौकरी त्याग कर कलकत्ता हाई स्कूल में सहकारी शिक्षक के रूप में नियुक्ति। 'भारती' पत्रिका में नियमित रूप से कविता एवं निबन्ध आदि की रचना (1918-1923)। इसी पत्रिका में सत्यसुंदर दास छद्मनाम से सत्यसुंदर-तत्त्व की आलोचना का सूत्रपात तथा श्री मधुव्रत छद्मनाम से ग्रंथ-समालोचना का प्रकाशन। 'भारती' गोष्ठी में कथाकार शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय तथा कवि सत्येन्द्रनाथ दत्त के प्रत्यक्ष सम्पर्क।

1920 कवि नज़रुल इस्लाम के साथ अतंरंगता लेकिन मोहितलाल के 'आमि' प्रबन्ध के कारण दोनों कवियों में सम्बन्ध-विच्छेद।

1921 'स्वप्न-पसारी' काव्य ग्रंथ प्रकाशित तथा एक सशक्त कवि के रूप में प्रसिद्धि। 'प्रवासी', 'नव्य-भारत', 'मुस्लिम-भारत', आदि पत्रिकाओं में अनेक कविताओं तथा निबन्धों का प्रकाशन।

1923 (1330 वैशाख बगाब्द) 'कल्लोल' पत्रिका का प्रकाशन। मोहितलाल इस पत्रिका के महत्वपूर्ण लेखक।

1924 'शनिवारेर चिठि' का प्रकाशन।

1925 'विस्मरणी' काव्य प्रकाशित, आधुनिकतावादी कवियों द्वारा कवि के रूप में सम्मानित तथा पुरातन-पंथियों द्वारा समालोचित। 'कालिकलम' का प्रकाशन—मोहितलाल आधुनिकों की इस पत्रिका के भी समादृत लेखक।

1927 'विचित्रा' भवन में रवीन्द्रनाथ के नेतृत्व में आधुनिक साहित्य की गति-प्रकृति पर आलोचना-सभा। रवीन्द्रनाथ के द्वारा आधुनिकों की रचना-पद्धति की प्रशंसा। 'शनिवारेर चिठि' का विरोध। मोहितलाल शनिचक्र के अग्रगण्य सदस्यों में से एक। 'शनिवारेर चिठि' में साहित्य के शाश्वत आदर्श के सम्बन्ध में निबन्ध आदि की रचना। एक चिन्तक, प्रबन्धकार तथा समालोचक के रूप में प्रसिद्धि।

1928 जुलाई (बंगाब्द 1335)—ढाका विश्वविद्यालय में बाङ्ला के अध्यापक नियुक्त। व्यापक अध्ययन तथा साहित्य समालोचना में निमग्न।

1936 'स्मर-गरल' काव्य का प्रकाशन। प्रथम समालोचना ग्रंथ 'आधुनिक बाङ्ला साहित्य' के प्रकाशित होने पर मनस्वी समालोचक के रूप में स्वीकृति।

1937 पटना में आयोजित प्रवासी बंग साहित्य सम्मेलन में साहित्य शाखा के सभापति निर्वाचित।

1938 पचासवें जन्म-दिन पर ढाका में सम्मान।

1941 'हेमन्त-गोधूलि' काव्य एवं 'विचित्र-कथा', 'विविध-कथा' प्रकाशित।

1944 शिशुकाव्य 'रूपकथा' प्रकाशित। ढाका विश्वविद्यालय से अवकाश।

कुछ समय तक हुगली जिले के बागनान में तथा बाद में कलकत्ते के निकट बड़िशा में स्थायी निवास। आदर्शवादी रुझान के चलते 'शनिवारेर चिठि' के साथ सम्बन्ध-विच्छेद।

1946 कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'सरोजिनी पदक' से विभूषित।

1947 तृतीय अनुक्रम में 'बंग-दर्शन' का सम्पादन।

1949 कलकत्ता विश्वविद्यालय में 'शरत्-स्मृति' पर व्याख्यान।

1945-52 के बीच, मननशील साहित्य समालोचक तथा लेखक के तौर पर साहित्य समाज में विशिष्ट स्थान तथा सम्मान अर्जित।

1950 वंगीय साहित्य परिषद, मेदिनीपुर शाखा के सत्ताइसवें अधिवेशन के सभापति।

1951 नदीया जिले के साहित्य-सम्मेलन के मुख्य सभापति।
'छंद-चतुदर्शी' काव्यग्रंथ प्रकाशित।

1951-52 बंगवासी कालेज के स्नातकोत्तर विभाग में बाङ्ला साहित्य के प्राध्यापक।

1952 'बंग-भारती' पत्रिका (मासिक) का सम्पादन। तीन अंकों के प्रकाशित हो जाने के बाद 26 जुलाई (10 श्रावण, 1359 बंगाब्द), कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी जनरल अस्पताल में देहांत।

ग्रंथ-सूची

(मोहितलाल मजुमदार की रचनाएँ)

काव्य

1. देवेन्द्र मंगल	1319 (1913 बंगाब्द)
2. स्वप्न पसारी	1922 (1328 ")
3. विस्मरणी	1927 (1333 ")
4. स्मरगरल	1937 (1343 ")
5. हेमन्त गोधूलि	1942 (1348 ")
6. रूप कथा	1946 (1352 ")
7. छंद-चतुर्दशी	1952 (1358 ")
8. मोहितलालेर सुनिर्वाचित कविता	1957 (1363 ")
9. मोहितलालेर काव्य-संभार	1961 (1367 ")
10. मोहितलाल मजुमदारेर श्रेष्ठ कविता	1970 (1376 ")

प्रबन्ध तथा समालोचना

11. आधुनिक बाङ्ला साहित्य	1937 (1343 बंगाब्द)
12. साहित्य-कथा	1939 (1345 ")
13. विविध-कथा	1942 (1348 ")
14. विचित्र-कथा	1942 (1348 ")
15. साहित्य-वितान	1943 (1349 ")
16. बाङ्ला कवितार छंद	1946 (1352 ")
17. बाङ्ला नवयुग	1946 (1352 ")
18. जयतु नेताजी	1947 (1353 ")
19. कवि श्री मधुसूदन	1948 (1354 ")
20. साहित्य-विचार	1948 (1354 ")
21. बंकिम-वरण	1950 (1356 ")
22. रवि-प्रदक्षिण	1950 (1356 ")
23. श्रीकान्तेर शरत्चंद्र	1951 (1357 ")

24. जीवन-जिज्ञासा 1952 (1358 ")
25. बाङ्ला प्रबन्ध तथा रचना-रीति 1952 (1358 ")
26. बाङ्ला ओ बंगाली 1952 (1358 ")
27. कवि रवीन्द्र ओ रवीन्द्र-काव्य, प्रथम खण्ड 1953 (1359 ")
द्वितीय खण्ड 1954 (1360 ")
28. बंकिमचंद्रेर उपन्यास 1949 (1355 ")

अनुवाद

29. विदेशी छोटो-गल्प संचयन 1951 (1357 बंगाब्द)
30. विदेशी प्रबन्ध संचयन 1953 (1359 ")

संकलित तथा सम्पादित ग्रंथ

31. बकिम-स्मृति 1940 (1346 बंगाब्द(
32. काव्य-मंजूषा 1943 (1349 ")
33. अभयेर कथा 1948 (1354 ")
34. काव्य-चयनिका (देवेन्द्रनाथ सेन) 1960 (1366 ")
35. काव्य-चयनिका (अक्षयकुमार बड़ाल) 1960 (1366 ")

सम्पादित पत्रिका

36. वंग-दर्शन (तृतीय अनुक्रम, मासिक श्रावण, 1354-1356 बंगाब्द)
37. बंग-भारतीय (मासिक बैशाख-आषाढ़ 1359 बंगाब्द) 1953

पत्र-संकलन

38. मोहितलालेर पत्र-गुच्छ 1970 (1376 बंगाब्द)

संदर्भ-ग्रंथों की सूची

महेन्द्रनाथ सरकार—तंत्रेर आलो, 1954
स्वामी निगमानन्द सरस्वती—तांत्रिक गुरु ओ साधन-पद्धति, आठवाँ सं. 1960 (1366 बंगाब्द)
शिवचन्द्र विद्यार्णव—तंत्र-तत्त्व 1974 (1380 बंगाब्द)
सतीन्द्रमोहन चट्टोपाध्याय—तंत्रेर कथा, द्वितीय सं. 1983
चिन्ताहरण चक्रवर्ती—तंत्र-कथा 1956 (1362 बंगाब्द)
सुकुमार सेन—बाङ्ला साहित्येर इतिहास, चतुर्थ खंड, 1958
श्रीकुमार बन्द्योपाध्याय—बाङ्ला साहित्येर विकासेर धारा, 1959

सुबोधचन्द्र सेनगुप्त—बाङ्ला समालोचना परिचय, 1970
शशिभूषण दाशगुप्त—कवि जतीन्द्रनाथ ओ आधुनिक बाङ्ला कवितार प्रथम पर्याय, 1965 (1371 बंगाब्द)
सजनीकान्त दास—आत्म-स्मृति, 1974 (1384 बंगाब्द)
ताराशंकर बन्द्योपाध्याय—आमार साहित्य जीवन, 1967 (1373 बंगाब्द)
अचिन्त्यकुमार सेनगुप्त—कल्लोल युग 1951 (1357 बंगाब्द)
बुद्धदेव बसु—कालेर पुतुल 1963 (1969 बंगाब्द)
असितकुमार बन्द्योपाध्याय—आधुनिक बाङ्ला साहित्येर संक्षिप्त इतिवृत्त 1961 (1367 बंगाब्द)
अजहरूद्दीन खाँ—बाङ्ला साहित्ये मोहितलाल, 1961
विनायक सान्याल—साहित्य सगमें 1952 (1358 बंगाब्द)
हरनाथ पाल—कवि मोहितलाल, (तिथि का उल्लेख नहीं)
द्विजेन्द्रलाल नाथ—1. मोहितलालेर काव्य परिक्रमा 1962
2. मोहितलाल मजुमदार : व्यक्तित्व ओ साहित्य प्रतिभा, 1982
दुर्गाशंकर मुखोपाध्याय—मोहितलालेर काव्य ओ कविमानस, 1972
Ninod C. Chowdhuri—The Auto-biorgraphy of an Unknown Indian, 1951
John Drinkwater (Edited)—The Outline of Literature, 1953

सामयिक-पत्र

शनिबारेर चिठि (मोहितलाल संख्या) 1953 (भाद्र 1359 बंगाब्द)
कथा-साहित्य (मोहितलाल संख्या 1953 भाद्र 1359 बंगाब्द)
कविता, आश्विन 1953 (1359 बंगाब्द)
विश शताब्दी, शारदीया संख्या 1960 (1366 बंगाब्द)
साहित्य संस्कृति 14 वर्ष, सख्या 2 । श्रावण आश्विन 1979 (1385 बं०)

□